✽ श्रीसर्वेश्वरो जयति ✽



॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

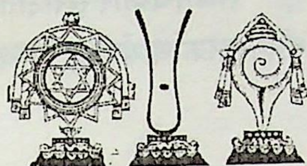
अथर्ववेदीय--

श्रीराधाकृष्णोपनिषद्

युग्मतत्त्वप्रदीपिकाव्याख्यालंकृता



✲ श्रीसर्वेश्वरो जयति ✲



॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

अथर्ववेदीय--

श्रीराधाकृष्णोपनिषद्

युग्मतत्त्वप्रदीपिकाव्याख्यालंकृता

व्याख्याकारः--

श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय-निम्बार्कभूषणः

व्या० सा० वेदान्ताचार्यः

प्राचार्यः--श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालयस्य

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ-निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबादः

पुष्करक्षेत्रे, अजमेरमण्डलम् (राजस्थानम्)

प्रकाशकः

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ-प्रकाशनविभागः

वि० सं० २०५६ श्रीनिम्बार्काब्दः ५०६७

२

पुस्तक प्राप्ति स्थान--

अखिल भारतीय श्रीनिम्बकार्चार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

पुष्करक्षेत्र, जिला-अजमेर (राज०)

प्रथमावृत्ति--

एक हजार

मुद्रक--

श्रीनिम्बार्क--मुद्रणालय

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

जिला--अजमेर (राज०) ३०५८१५

न्यौछावर

दश रूपये मात्र

✻ श्रीसर्वेश्वरो जयति ✻

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥



समर्पणम्



राधामाधवयुग्मस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥
गीयते श्रुतिभिः सूत्रैः स्मृतिभिः कविभिः सदा ॥१॥

मञ्जुलैश्चरितैर्युक्ता श्रीनिकुञ्जविहारिणोः ॥
राजते त्रिषु लोकेषु सैषा ह्युपनिषद्द्वयी ॥२॥

युग्मप्रसादलेशेन युग्मोपनिषदोरियम् ॥
व्याख्या विरचिता लघ्वी **युग्मतत्त्वप्रदीपिका** ॥३॥

त्वदीयं वस्तु हे कृष्ण ! हे राधे ! वृषभानुजे ! ॥
गृह्यतामर्पितं भक्त्या मया वामनगृह्यताम् ॥४॥

वैशाख शु० ३ (अक्षयतृतीया)
बुधवार वि० सं० २०५९
दिनाङ्क १५ / ५ /२००२

समर्पकः--
वासुदेवशरण उपाध्याय

✻ श्रीसर्वेश्वरो जयति ✻

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्र-चूडामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैत-प्रवर्तक, यतिपतिदिनेश, राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज

का

मङ्गलात्मक -- शुभाशीर्वाद

काण्डत्रयात्मक वेद निखिलजगन्नियन्ता सर्वान्तरात्मा परात्पर परब्रह्म भगवान् सर्वेश्वर के निश्वासभूत लोक विख्यात है । ज्ञान काण्ड के श्रुतिभाग को उपनिषद् नाम से निर्दिष्ट किया गया है । सुप्रसिद्ध ईश, केन, कठ-प्रश्नादि एकादशोनपिषद् के अतिरिक्त उपासनाकाण्ड के भाग को भी उपनिषद् संज्ञा से ही अभिहित किया है । उन अष्टोत्तरशत उपनिषदों में श्रीराधिकोप-निषद् एवं श्रीकृष्णोपनिषद् भी परम प्रसिद्ध है । युगलकिशोर वृन्दावननवनिकुञ्जविहारी भगवान् श्रीराधाकृष्ण के दिव्य स्वरूप का इन उपर्युक्त-उपनिषदों में संक्षेपात्मक अनुपम प्रतिपादन हुआ है जो मनीषीजनों के लिये सदा मननीय है ।

श्रीसुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरु श्रीभगव-न्निम्बार्काचार्यचरणों ने इसी युगल-उपासना का अति मनोहर वर्णन अपने श्रीवेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी, श्रीप्रातःस्तवराज, श्रीराधाष्टक स्तोत्र में श्रीयुग्म स्वरूप का अनिर्वचनीय निरूपण किया है । इन उपर्युक्त उभय उपनिषदों में श्रीयुग्म स्वरूप का

निर्वचन अत्यन्त विलक्षण रहस्यात्मक परम दिव्यतम है । बहुकाल पूर्व अ० पं० श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ ने इनका हिन्दी भावार्थ किया था जिसे पं० श्रीगोविन्ददासजी सन्त धर्मशास्त्री पुराणतीर्थ द्वैताद्वैत विशारद ने प्रकाशित कराया। अब वे प्रतियाँ अप्राप्य होगयीं । अत्यन्त प्रसन्नता है हमारे श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य विद्वन्मूर्द्धन्य पण्डितप्रवर श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, साहित्य-व्याकरण-वेदान्ताचार्य ने **युगमतत्त्वदीपिका** नामक संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी में उसका अविकलरूप से अनुवाद सहित जो परम गरिमापूर्ण महनीय कार्य किया है वह विद्वज्जगत् एवं श्रीनिम्बार्कदर्शन शास्त्र के अध्येता छात्रों के लिये नितान्त उपादेय एवं परम मननीय है । व्याख्या की प्रस्तुति इतनी ओजस्वी गम्भीर माधुर्य एवं इतनी सुभग सरसता से प्रपूरित है जिसे मनन करने पर हृदय में रस की धारा प्रस्फुटित होती है, हमने आद्योपान्त व्याख्या का विधिवत् स्वाध्याय किया जिससे चित्त में अगाध रसानुभूति हुई । सर्वनियन्ता श्रीसर्वेश्वर भगवान् श्रीराधामाधव प्रभु के श्रीयुगमपदाम्बुजों में मुहुर्मुहुः यह मङ्गल अभिकामना है कि पण्डितजी सर्वविध रूप से पूर्ण स्वस्थ रहते हुए चिरकाल पर्यन्त अवस्थित रहते इसी प्रकार अपने साहित्य सर्जन से सम्प्रदाय की सेवा में तत्पर रहें । आप ३९ वर्ष से यहाँ आचार्यपीठ में अपने विद्यालय में सुरभारती की जो सेवा कर रहे हैं तथा आचार्य-पीठस्थ श्रीनिम्बार्क-पाक्षिक-पत्र के सम्पादक पद पर रहकर जो अपनी विविधात्मक सेवा सम्पादन कर रहें हैं वह निश्चय ही परम आदर्शरूप है । हम पुनः श्रीप्रभु से आपके अभ्युदयार्थ अभ्यर्थना करते हैं ।

✲ श्रीसर्वेश्वरो जयति ✲

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्र-चूडामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैत-प्रवर्तक, यतिपतिदिनेश, राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज

का

मङ्गलात्मक -- शुभाशीर्वाद

काण्डत्रयात्मक वेद निखिलजगन्नियन्ता सर्वान्तरात्मा परात्पर परब्रह्म भगवान् सर्वेश्वर के निश्वासभूत लोक विख्यात है । ज्ञान काण्ड के श्रुतिभाग को उपनिषद् नाम से निर्दिष्ट किया गया है । सुप्रसिद्ध ईश, केन, कठ-प्रश्नादि एकादशोनपिषद् के अतिरिक्त उपासनाकाण्ड के भाग को भी उपनिषद् संज्ञा से ही अभिहित किया है । उन अष्टोत्तरशत उपनिषदों में श्रीराधिकोपनिषद् एवं श्रीकृष्णोपनिषद् भी परम प्रसिद्ध है । युगलकिशोर वृन्दावननवनिकुञ्जविहारी भगवान् श्रीराधाकृष्ण के दिव्य स्वरूप का इन उपर्युक्त-उपनिषदों में संक्षेपात्मक अनुपम प्रतिपादन हुआ है जो मनीषीजनों के लिये सदा मननीय है ।

श्रीसुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यचरणों ने इसी युगल-उपासना का अति मनोहर वर्णन अपने श्रीवेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी, श्रीप्रातःस्तवराज, श्रीराधाष्टक स्तोत्र में श्रीयुग्म स्वरूप का अनिर्वचनीय निरूपण किया है । इन उपर्युक्त उभय उपनिषदों में श्रीयुग्म स्वरूप का

निर्वचन अत्यन्त विलक्षण रहस्यात्मक परम दिव्यतम है । बहु-
काल पूर्व अ० पं० श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ
ने इनका हिन्दी भावार्थ किया था जिसे पं० श्रीगोविन्ददासजी
सन्त धर्मशास्त्री पुराणतीर्थ द्वैताद्वैत विशारद ने प्रकाशित कराया।
अब वे प्रतियाँ अप्राप्य होगयीं। अत्यन्त प्रसन्नता है हमारे श्रीसर्वे-
श्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य विद्वन्मूर्द्धन्य पण्डितप्रवर
श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, साहित्य-व्याकरण-वेदान्ताचार्य
ने **युगमतत्त्वदीपिका** नामक संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी में
उसका अविकलरूप से अनुवाद सहित जो परम गरिमापूर्ण मह-
नीय कार्य किया है वह विद्वज्जगत् एवं श्रीनिम्बार्कदर्शन शास्त्र के
अध्येता छात्रों के लिये नितान्त उपादेय एवं परम मननीय है ।
व्याख्या की प्रस्तुति इतनी ओजस्वी गम्भीर माधुर्य एवं इतनी
सुभग सरसता से प्रपूरित है जिसे मनन करने पर हृदय में रस की
धारा प्रस्फुटित होती है, हमने आद्योपान्त व्याख्या का विधिवत्
स्वाध्याय किया जिससे चित्त में अगाध रसानुभूति हुई । सर्व-
नियन्ता श्रीसर्वेश्वर भगवान् श्रीराधामाधव प्रभु के श्रीयुगम-
पदाम्बुजों में मुहुर्मुहुः यह मङ्गल अभिकामना है कि पण्डितजी
सर्वविध रूप से पूर्ण स्वस्थ रहते हुए चिरकाल पर्यन्त अवस्थित
रहते इसी प्रकार अपने साहित्य सर्जन से सम्प्रदाय की सेवा में
तत्पर रहें । आप ३५ वर्ष से यहाँ आचार्यपीठ में अपने विद्यालय
में सुरभारती की जो सेवा कर रहे हैं तथा आचार्य-पीठस्थ
श्रीनिम्बार्क-पाक्षिक-पत्र के सम्पादक पद पर रहकर जो अपनी
विविधात्मक सेवा सम्पादन कर रहें हैं वह निश्चय ही परम
आदर्शरूप है । हम पुनः श्रीप्रभु से आपके अभ्युदयार्थ अभ्यर्थना
करते हैं ।

❋ श्रीसर्वेश्वरो जयति ❋

॥ पुरोवाक् ॥

वेद अपौरुषेय हैं और वेदों के भक्ति एवं ज्ञान काण्ड का सारसर्वस्व उपनिषद् भी अपौरुषेय हैं । क्योंकि--वे अनादि अविच्छिन्न सम्प्रदाय परम्परा से प्राप्त तथा अस्मर्यमाण कर्तृक होने से वेद स्वरूप ही है । अतः भारतीय संस्कृति के प्राण उपनिषदों का भारतीय वाङ्मय में बड़ा महत्व है ।

उपनिषदों के अन्तर्गत अथर्ववेदीय श्रीराधाकृष्णोपनिषद् वैदिक समस्त सनातन धर्मावलम्बी सज्जनों के लिए तो सर्वमान्य उपनिषद् है ही, किन्तु--श्रीराधाकृष्ण उपासकों के लिए तो अपने जीवन का परम धन है । कुछ आधुनिक तथाकथित शिक्षित महानुभाव जो राधा उपासना को अर्वाचीन समझते हैं, उन्हें उक्त श्रीराधाकृष्णोपनिषद् पर गहन मनन चिन्तन करके अपनी भ्रान्ति को निर्मूल करना चाहिए ।

हर्ष का विषय है कि--माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर ने श्रीराधाकृष्णोपनिषद् को उपाध्याय परीक्षा में पाठ्य ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत किया है । उक्त ग्रन्थ के अध्ययन--अध्यापन की सुविधा हेतु अभी तक उक्त ग्रन्थ पर कोई सुबोध व्याख्या उपलब्ध नहीं थी । अतः श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य--श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, व्याकरण--साहित्य--वेदान्ताचार्य ने उक्त ग्रन्थ पर संस्कृत में युग्मतत्त्वदीपिका व्याख्या का प्रणनयन करके उपाध्याय परीक्षा के शिक्षक,

छात्र एवं अध्ययनशील सज्जनों का महान् उपकार किया है । व्याख्या के साथ हिन्दी भावार्थ करके तो व्याख्या को और भी अधिक सरल और सुबोध बना दिया है ।

आशा है--वेदान्त दर्शन के छात्र एवं भक्तिरस के तत्त्वान्वेषी महानुभाव उक्त व्याख्या का गम्भीर अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करते हुए व्याख्याकार के श्रम को सार्थक करेंगे ।

श्रीचरणानां वशंवदः--

दयाशङ्कर शास्त्री

शिक्षामन्त्री--

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा समिति

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

जि० अजमेर (राजस्थान)

✲ श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ✲

भूमिका

उपनिषद् उपासना विद्या है । उपनिषद् और उपासना का शाब्दिक अर्थ भी समान है समीप बैठना । उपनिषद् वेदान्त दर्शन का प्रधान शास्त्र है । वेदों के कर्म-ज्ञान-उपासना काण्डों में से उपासना काण्ड को उपनिषद् कहते हैं । कुछ उपनिषद् मन्त्र संहिता की शाखाओं के शिरोभाग (अन्तिम भाग) हैं, कुछ ब्राह्मण भाग से हैं और कुछ आरण्यक भाग से गृहीत हैं । उपनिषदों में वर्णनात्मक, संवादात्मक और कथात्मक शैली से विषय वस्तु को समझाया गया है । छान्दोग्योपनिषद् के सनत्कुमार नारद संवाद में भूमविद्याका और बृहदारण्यकोपनिषद् के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद, याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद में ब्रह्म विद्या का जो अद्भुत विवेचन मिलता है वह मुमुक्षुजनों के लिए निरन्तर चिन्तनीय, मननीय, अवधेय है । ईशावा-स्योपनिषद् मन्त्रभागान्तर्गत होने से अति महत्वपूर्ण है। इसमें परमात्म तत्त्व का विवेचन वर्णनात्मक शैली में किया गया है । केनोपनिषद् में इन्द्रादिदेवता और यक्षरूपधारी विष्णु का प्रसङ्ग कथात्मक शैली में सरलता से परिवर्णित है । कठोपनिषद् में यमनचिकेता संवाद रूप में प्रश्नोपनिषद् के प्रश्नोत्तर रूप में बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से आत्मतत्त्व जैसे दुरूह विषय को समझाया है ।

ईशावास्य-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तैत्तिरीय-ऐतरेय-श्वेताश्वेतर-बृहदारण्यक-छान्दोग्य ये ११ उपनिषद् पठन-पाठन में मुख्यतया प्रचलित होने से विशेष प्रसिद्ध हैं और इन पर सभी सम्प्रदायाचार्यों ने अपने-अपने सिद्धान्त तथा उपासना के अनुकूल व्याख्याएँ की हैं । अन्य उपनिषदों में उपासना विशेष से व्याख्याएँ उपलब्ध हैं । अथर्व-वेद

की पिप्पलाद शाखान्तर्गत गोपालतापिनी उपनिषद् में गोपालाष्टादशाक्षरमन्त्र, श्रीकृष्णतत्त्व, उपासना पद्धति आदि का विशद वर्णन है । उस पर श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय परम्परानुवर्ती पं० श्रीअमोलकरामजी शास्त्री की संस्कृत व्याख्या है । इसी प्रकार अनेक उपनिषद् अन्यान्य वैष्णव परम्परानुरूप उपलब्ध हैं । उपनिषदों की भाषा शैली वेद संहिता, ब्राह्मण भाग की तरह आर्ष है, कथावस्तु पुराणेतिहास के समान लौकिक है । इससे यह सिद्ध होता है कि मूलस्वरूप वेद का भाष्य ही पुराणेतिहास है । इसीलिए **इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति** ।। अर्थात् विद्वान् पुरुष इतिहास, (महाभारत) पुराण समूह के द्वारा ही वेद के तात्पर्यार्थ का विस्तार करें, अल्पज्ञ व्यक्तियों से वेद इसलिए डरते हैं कि ये मेरे गूढ रहस्य न समझ कर अर्थ का अनर्थ करते हुए मेरा अपहरण न करें । अस्तु--

अथर्ववेद की शौनकीय शाखान्तर्गत राधिकोपनिषद् और कृष्णोपनिषद् लघु कलेवर होने पर भी राधातत्त्व एवं कृष्णतत्त्व का अत्यन्त प्राञ्जल रूप से प्रतिपादन करती हैं । इन दोनों उपनिषदों पर अधिकारी श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ की संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या के अतिरिक्त कोई विशद व्याख्या देखने में नहीं आई । इस उपनिषद् द्वयी को लगभग २० वर्षों से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेर द्वारा संस्कृत संकाय में कनिष्ठ उपाध्याय (कक्षा-११) के लिए श्रीनिम्बार्क दर्शन विषय के पाठ्यक्रम में प्रथम पत्र हेतु स्वीकृत किया हुआ है । कक्षा और विषय के स्तर पर उक्त उपनिषदों की संस्कृत व्याख्या का होना परम आवश्यक था । श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के प्राचार्य निम्बार्कभूषण श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय व्या० सा० वेदान्ताचार्य ने दोनों उपनिषदों पर **युग्मतत्त्वप्रदीपिका** नामक संस्कृत व्याख्या हिन्दी भावार्थ सहित लिखकर इस अभाव की पूर्ति की है । प्रत्येक मन्त्र का अवतरण, अन्वय, व्याख्या एवं हिन्दी भावार्थ यह क्रम

रखा है । यथाऽवसर शब्दों की व्युत्पत्ति लौकिक वैदिक व्याकरण के आधार पर दर्शाया गया है । ब्रह्मवादिनः, शक्तिधात्री, विश्वधात्री, देव-धात्री, वनधात्री, गण्यन्ते, स्तुवते इत्यादि शब्दों का प्रकृति प्रत्यय प्रदर्शन पूर्वक व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ निर्दिष्ट किया गया है ।

येयं राधा यश्चकृष्णोरसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत् ।

इस मन्त्र की व्याख्या में उदाहरण और दृष्टान्त से राधाकृष्ण का स्वाभाविक भेदाऽभेद स्वरूप स्पष्ट किया है । जैसे--

यथा आकृतिमतां शरीरं छायया शोभते तथैव अनयोः स्वरूपमपि छायाशरीरवत् भिन्नाभिन्नमस्ति ।

यद्यपि समुद्रतरङ्गवत् इति दृष्टान्तो ब्रह्मणि न घटते तथापि विवक्षितांशमात्रमादाय तथा गृह्यते ।

तथाहि-यदा श्रीकृष्णः समुद्र इव धीरगम्भीररूपेणावतिष्ठते तदा श्रीराधा तरङ्गवल्लोलायमाना विराजते,

यदा च राधा समुद्रवद् धीरगम्भीरा भवति तदा श्रीकृष्णस्तरङ्ग इव चञ्चलो जायते ।

उभौ रससिन्धुस्वरूपौ चेतनाचेतनात्मकविश्वस्य नियन्तारौ सर्वेश्वरौ स्तः । अतः पूर्वोक्तं द्वैविध्यं तयोः सङ्गतम् । समुद्रस्तु प्राकृतो-ऽचेतनः, तस्मात् स स्वरूपेणैवावस्थातुं शक्नोति, तरङ्गश्च तरङ्गरूपेणेति विभावनीयम् । एवं राधाकृष्णयो भेदाभेदत्वं स्वभाव सिद्धम् ।

इसी प्रकार **देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वैदैरूपगीयते । निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः रामकृष्णयोः** इस मन्त्र के सन्दर्भ में सच्चिदानन्दः परमात्मा भगवान् श्रीसर्वेश्वरः स्वलीलाविभूतौ नित्यान्तरङ्ग-बहिरङ्गादिपार्षदान् सहचरी-सहचररूपेणावतारयति । काम-क्रोधादि विकारजताँश्च स्वविरोधिरूपेणावतारयति तेषामपि नित्यत्वात् । एतदभि-प्रेत्योत्तरत्रमन्त्रेषु श्रीकृष्णस्य सर्वनियन्तृत्वं, सर्वान्तर्यामित्वं, सर्वाधारत्वं,

सर्वेश्वरत्वं च प्रतिपादयन्ति श्रुतयः, इत्यादिरूप से व्याख्याकार ने अपनी मौलिकता का दिग्दर्शन करते हुए कृष्ण तत्त्व का युक्तियुक्त प्रतिपादन किया है ।

बलं ज्ञानं सुराणां वै, अष्टावष्टसहस्रे द्वे, कश्यपोलूखलः ख्यातः इत्यादि मन्त्रों की व्याख्या में व्याख्याकार ने पुराणोपनिषद् आदि में वर्णित प्रसङ्गों को अन्तर्कथा के रूप में समावेश कर अध्येताओं के लिए विषय वस्तु को समझने में सुगम बना दिया है । श्रीनिम्बार्क भगवान् के प्रसङ्ग में स्वरचित पद्यों का उद्धरण देकर श्रीराधाकृष्ण की माधुर्यमयी उपासना में आठ रूपों से सेवाराधना का वर्णन किया है, यथा--

राधायामङ्गकान्तिर्विलसति सततं रङ्गदेवी सखीषु,
स्तोको गोपाग्रणीर्यः सखिषु गुणनिधिर्व्यूहमध्येऽनिरुद्धः ।
भाति श्रीचक्रराजोऽसुरवनदहनश्चायुधेषु प्रदीप्तः,
हस्ताब्जे यष्टिरूपो नियमयति जगत् शोभमानो मुरारेः ।
दोग्ध्री धेनुः सवत्सा गुणगणनिलया धूसराख्या च गोषु,
निम्बार्को निम्बवृक्षार्पिततरणितया देशिकेषु प्रसिद्धः ।
इत्येवं चाष्टधा यो भुवि विमलमतिः सेवमानो मुकुन्दं
द्वैताऽद्वैतात्मविद्याप्रवचनकुशलः सोऽवतात्सर्वदा नः ।।

जो भगवान् निम्बार्काचार्य श्रीराधाजी की अङ्गकान्ति के रूप में, सखियों के मध्य रङ्गदेवी के रूप में सखाओं में गुणवान् गोपश्रेष्ठ स्तोकसखा के रूप में, चतुर्व्यूह मेंअनिरुद्ध के रूप में शोभायमान हैं और आयुधो में असुररूपी वन को भस्म करने में अग्नितुल्य वे चक्रराज श्रीसुदर्शन सदा जाज्वल्यमान चमकते हैं तथा भगवान् मुरारि के हस्तकमल में यष्टि रूप से शोभायमान होते हुए, वे आचार्य पशु तुल्य अज्ञानी जनों को कुमार्ग से रोक कर सुमार्ग में प्रेरित करते हैं । गायों में सभी गुणों से पूर्ण, सद्यः प्रसूता प्रशस्त दूध वाली धूसरानामक गौ के रूप में श्रीनिम्बार्क भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं । इधर आचार्यों में निम्बवृक्ष पर

सूर्य दर्शन कराने से श्रीनिम्बार्क के नाम से प्रसिद्ध हैं । इस प्रकार भूतल में आठ रूपों से जिन्होंने भगवान् श्रीमुकुन्द की सेवाराधना करते हुए अपनी निर्मल एवं अप्रतिहत बुद्धि के प्रभाव से शास्त्र सिद्ध स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का अत्यन्त विलक्षण कौशल से प्रवर्तन किया वे अनुग्रह विग्रह आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् हम सब की सदा रक्षा करें ।

एवमेव २४-२५ पद्यों के व्याख्या प्रसङ्ग में वैष्णवों के बाह्य लक्षणों का उल्लेख करते हुए सप्रमाण शंख, चक्र उर्द्धपुण्ड्र एवं श्याम-श्वेत बिन्दु का प्रतिपादन अत्यन्त सरल रूप में किया गया है । श्रीनिम्बार्क दर्शन के सिद्धान्त एवं उपासना के विषय में प्रारम्भिक परिज्ञान के लिए ये दोनों उपनिषद् एवं उनकी यह व्याख्या परमोपयोगी रहेगी ऐसा मैं विश्वास रखता हूँ । छात्रों के निमित्त तो पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश के लिए लघु सिद्धान्त कौमुदी की तरह निम्बार्क दर्शन में प्रवेश हेतु यह युग्मतत्त्वप्रदीपिका निश्चय ही अन्धकार में दीपप्रकाश का कार्य करेगी । अब प्रसङ्गवश व्याख्याकार का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं --

* परिचय *

प्रस्तुत व्याख्या के रचयिता विद्वद्वरेण्य पं० श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय व्या० सा० वेदान्ताचार्य मूलतः नेपाल निवासी हैं । आपका जन्म वि० सं० १९९७ (श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी) दि० १८/८/१९४० को नेपाल राष्ट्र के गण्डकी अञ्चल स्याङ् जामण्डलान्तर्गत किचनासदह ग्राम में हुआ । आपसे बड़ी एक बहन और छोटे ३ भाई (अनुज) हैं । इस प्रकार माता-पिता की ५ सन्तानों में द्वितीय, भाईयों में प्रथम (ज्येष्ठ) हैं । आपके पिता श्रीहरिप्रसादजी उपाध्याय (श्रीहरिशरण) माताश्री उमाकान्ति देवी उपाध्याय (इन्दुलेखा) अपने समय के परम भागवत वैष्णव थे । मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद इस शास्त्र वचन के अनुसार

आपको बाल्यावस्था में ही श्रेष्ठ माता, पिता, आचार्यों का मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ था । अतः माताश्री के द्वारा ही प्रारम्भिक अक्षर ज्ञान प्राप्त हुआ। उन दिनों गावों में प्रारम्भिक शिक्षा के विद्यालय भी उपलब्ध नहीं थे । आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार के बाद शुक्ल यजुर्वेद का सस्वर अध्ययन करने के बाद पिताश्री ने घर पर ही व्याकरण-काव्य-कोष आदि के अध्यापन की व्यवस्था की थी । १२ वर्ष की अवस्था में अनन्तश्री सार्वभौमाचार्य श्रीभगवतशरणदेवजी महाराज से वैष्णवी दीक्षा दिलायी । माता-पिता की सदा यही इच्छा रही कि बालक आगे चलकर शास्त्रज्ञ वैष्णव बन जाय । तदनुसार गीता, रामायण, भागवत आदि सद्ग्रन्थों का पठन चिन्तन भी आरम्भ कराया । शनैः शनैः आपके ज्ञान का क्षेत्र बढने लगा । घर से बाहर निकल कर उत्तम शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई । नेपाल में ही अनेक स्थानों पर प्रयास किया सन्तोष नहीं हुआ, अन्त में पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से १८ वर्ष की अवस्था में श्रीधामवृन्दावन पहुँचे । अतः उपर्युक्त उपनिषद् वचन आपके जीवन में अक्षरक्षः सत्य साबित हुए । आगे से आगे वैसा संयोग बनता गया । सदा सज्जनों का संग मिलता रहा । क्या छात्र जीवन, क्या गार्हस्थ्य जीवन सदा ही सत्संग में रहा । अध्ययन के प्रारम्भिक अवधि में आपको पं० श्रीतुलसीरमणजी शर्मा, पं. श्रीदण्डपाणिजी शर्मा, पं. श्रीमाधवशरणजी उपाध्याय, पं. श्री रुद्रनाथजी शर्मा आदि विद्वानों का वात्सल्यमय मार्ग दर्शन मिलता रहा । वृन्दावन में पं. श्रीतुलसीशरणदेवजी महाराज एवं श्रीहरिशरणजी उपाध्याय का संरक्षण प्राप्त हुआ । पूर्व मध्यमा तक की परीक्षाएँ वृन्दावन में उत्तीर्ण करके सन् १९६० में श्रीमाधव संस्कृत महाविद्यालय, गोवर्धन में प्रविष्ट हुए । वहीं पर आचार्य पर्यन्त नियमित छात्र के रूप में अध्ययन किया । अध्ययन काल में सभी गुरुजनों का स्नेह बना रहा, विशेषकर प्रधानाचार्य श्रीगणेशदत्तजी पाण्डेय की आप पर पूर्ण कृपा रही । १९६६ में व्याकरणाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके आप स्वदेश लौट गये । दो वर्ष

तक गाँव की प्राथमिक शाला में पढाया, कुछ समय पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से केलादी घाट में अध्यापन कराया । तदनन्तर पुनः वृन्दावन और गोवर्धन पहुँचे । गोवर्धन में अध्यापन प्रारम्भ किया ही था, प्रसङ्गवश जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ वृन्दावन जाना हुआ। आचार्यपीठस्थ संस्कृत विद्यालय में प्राचार्य की आवश्यकता थी । अतः श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन के प्राचार्य श्रीवैद्यनाथजी झा एवं प्राध्यापक श्रीहरिशरणजी शास्त्री के परामर्श अनुसार आचार्यश्री की आज्ञा से निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पहुँच गये । दि० १/८/१९६८ से आज दिन तक यहीं पर प्रचार्य पद का कार्य निर्वहन कर रहे हैं । इसी अवसर पर १९७५ में साहित्याचार्य एवं १९८५ में निम्बार्क वेदान्ताचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । आपके कार्यकाल में श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय जो पूर्व में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की परीक्षाएँ सञ्चालित करता था सन् १९६९ में उसका सम्बन्धन उपाध्याय स्तर तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेर एवं सन् १९८० में राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से शास्त्री स्तर तक हो गया । सन् १९७६ में श्रीनिम्बार्क दर्शन विद्यालय के नाम से एक अन्य विद्यालय वाराणसी से सम्बद्ध कर निम्बग्राम में सञ्चालित है । उसके सम्बन्धन में भी आपकी प्रमुख भूमिका रही है । श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय में व्याकरण, साहित्य एवं निम्बार्क दर्शन में शतशः छात्र स्नातक उपाधि प्राप्त कर नेपाल तथा भारत में शिक्षक, चिकित्सक, प्रशासनिक क्षेत्रों में अपना अपना कार्य वहन कर रहे हैं । इससे पूर्व आपके संरक्षण में लघुभ्राता श्रीदुर्गाप्रसाद उपाध्याय, श्रीगोपीरमण उपाध्याय, श्रीधरणीधर उपाध्याय ने भी शिक्षा ग्रहण की है ।

इसके अतिरिक्त नेपाल के अपने निकटतम सगे सम्बन्धियों के शतशः बालक आपके छात्र जीवन से अब तक जुड़े रहे हैं । आप अध्ययन-अध्यापन के साथ श्रीनिम्बार्क धार्मिक-पाक्षिक-पत्र का सम्पादन भी करते

हैं । संस्कृत, हिन्दी, नेपाली तीनों भाषाओं में आपका समान अधिकार है । तीनों भाषाओं में कविता, लेख आदि लिखते रहते हैं । आपके इन्हीं सेवा कार्यों तथा सम्प्रदाय निष्ठा के लिए सन् १९८७ के श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव के शुभावसर पर अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद की ओर से निम्बार्कभूषण पदवी से आपको अलंकृत किया गया । यद्यपि आज तक आपने अपनी रचनाओं का पृथक् ग्रन्थ के रूप में प्रकाशन नहीं कराया तथापि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यथा समय प्रकाशन होता रहता है । आपके प्रकाशित-अप्रकाशित लेख व कविताओं का संकलन किया जाये तो विभिन्न विषयों के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो सकते हैं । पूज्य आचार्यश्री की आज्ञा से आचार्यपीठ द्वारा प्रस्तुत व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है इस कारण हम सब को गौरव की अनुभूति हो रही है। आपको अध्यापन, लेखन, प्रवचन के साथ भागवत कथा का भी अच्छा अभ्यास है । छात्रों के प्रति आप पुत्रवत्स्नेह रखते हैं । छात्र भी आपको पितृसमान समझते हैं और वे सेवा शुश्रूषा में लगे रहते हैं । प्रचीन गुरुकुल में जो आदर्श गुरु शिष्य का था आचार्यपीठ में आज भी देखने को मिलता है । पिछले २ वर्ष से उच्च रक्तचाप के कारण आपको सामान्य पक्षाघात का रूप बन गया है, फिर भी अध्ययन, अध्यापन लेखन आदि निरन्तर पूर्ववत् चलता ही रहता है । आपका जीवन सदाचार-मय परम पावन है । माता-पिता के परमधाम के पश्चात् भ्रातृवर्ग, पुत्र-पौत्रादि समस्त परिवारजन के आप आश्रय हैं । आपकी छत्रछाया में हम सभी सदा सुख का अनुभव करते हैं । आपकी चार सन्तान में २ पुत्र, २ पुत्री हैं । शिक्षा में सभी स्नातक व स्नातकोत्तर है । आपने मुझे इस व्याख्या की भूमिका लिखने की आज्ञा प्रदान की । तदनुसार यथामति संक्षिप्त परिचय सहित लिखकर सेवार्पित है ।

विनयावनतः-**मुकुन्दशरण उपाध्याय व्या० आ०**

प्रधानाध्यापक--श्रीओम राजकीय प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय

डीडवाना. जि० नागौर (राज०)

आत्मनिवेदनम्

वेदान्तदर्शने चिदचिदीश्वरभेदेन पदार्थस्त्रिविधो वर्णितः । भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म ह्येतत् इति श्रुतिवचनानुसारं तेषां स्वरूपतो भेदेऽपि ब्रह्मात्मकत्वेनाऽभेदो निर्दिश्यते । इदमेव शास्त्रेषु स्वतः स्फूर्तं स्वाभाविकद्वैताऽद्वैततत्वं कथ्यते ।

तत्रादौ त्रयाणां वैलक्षण्यमुच्यते--

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च सदेव सौम्येदमग्र आसीदित्यदि श्रुतिवाक्येषु प्रधान-भोग्य-इदमादिशब्दैः, द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । उत्तमः पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृतः । क्षेत्रज्ञं चापिमां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम, इत्यास्मृतिषु क्षरक्षेत्रप्रकृति मायादिशब्दैर्यत्तत्त्वं निर्दिष्टं तदचेतनं तत्त्वं कथ्यते। ब्रह्मादिस्थावरान्तानि शरीराणि जडत्वात्परिणामित्वात्क्षरः पुरुष उच्यते । स एवाऽन्नमयः पुरुषः, नश्वरदेहः, क्षरः, क्षेत्रञ्च कथ्यते । अत्रैक-वचनं जात्यभिप्रायेण, अतएव क्षरः सर्वाणिभूतानि इति विवृतिं संगच्छते। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया, इत्यनेन परिणामिदेहे-न्द्रियादिरूपाणि यन्त्रारूढाणि यथा लोके सूत्रधारः सूत्रवद्धानि वस्तूनि भ्रामयति तथैव परमात्माऽपि सर्वाणि भ्रामयति । एवं प्राकृतमप्राकृतं कालचक्रञ्चेतित्रयमप्यचेतनद्रव्यं चैतन्यरूपाद् जीवात् सर्वनियन्तुः परमेश्वरादपि विलक्षणम् ।

तत्रैव श्रुतिस्मृतिषु क्षेत्रज्ञ-भोक्ता-अक्षर-कूटस्थादिशब्दैर्यन्निर्दिष्टं तदेव चित्तत्त्वमभिधीयते । कूटस्थः=कूटे प्रकृतिकार्यभूते शरीरसमुदाये स्थि-तोऽपि परिणामरहितो नित्यः कूटस्थपुरुषः, अक्षरपदवाच्यः । अत्राप्येक-

वचनं ज्यात्यभिप्रायेण । अतएव देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणादिभ्यो विलक्षणाः । ज्ञानस्वरूपा ज्ञातारो ह्यहमर्थाश्च ते मता, इत्याचार्योक्तिः सङ्गच्छते । एवं अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः, इत्यादिवचनैर्जन्मादिषड्विकाररहितत्वात् ज्ञानस्वरूपत्वात्, ज्ञानाश्रयत्वाच्च प्रकृतिवर्गाद्विलक्षणो जीव उच्यते । तथा च नियम्यत्वात्, व्याप्यत्वादनन्तत्वा दणुत्वाद् ब्रह्माधीनस्थितिप्रवृत्ति-कत्वाच्च परब्रह्मणः सर्वेश्वरादपि विलक्षणो जीवात्मेति ।

एवमेव पूर्वोक्तश्रुतिस्मृतिवचनेषु पति-गुणेश-प्रेरिता-एक-अद्वितीय-पुरुषोत्तमादिशब्दैर्यदुक्तं तदीश्वरतत्त्वमिति मन्तव्यम् । उत्तमः= उत्कृष्टतमःपुरुषस्तु क्षराक्षरनिर्दिष्टाभ्यां द्वाभ्यामन्यो विलक्षणः परमात्मेत्युदाहृतः । परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः, इतिस्मृतेः । कोऽसौ परमात्मा ? इति जिज्ञासायामुच्यते यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः । यस्मात्क्षारमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मिलोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः, इत्यादि । अर्थात्--य आत्मतया लोकत्रयमाविश्य बिभर्ति=धारयति पोषयति च । एवमव्ययोऽविनाशी ईश्वर=सर्वलोकनियामक इति । यस्मात्क्षरं पुरुषं भोग्यभूतं सर्वभूतात्मकं जडमतीतोऽहम्, अक्षरात्=कूटस्थाद्, भोक्तु र्विज्ञानमयात्पुरुषादपि, उत्तमः= उत्कृष्टः, तस्यापिनियामकत्वात् । अतो लोके वेदे चाहं सर्वेश्वरः पुरुषोत्तम इत्यादिपदैः प्रथितः=विख्यातोऽस्मि । अत्र लोक्यते दृश्यते वेदार्थोऽनेनेति लोक इति, इतिहासपुराणादि विवक्षितः । स उत्तमः पुरुषः, इत्यादिवेदे च विवक्षितः । इत्येव श्रुतिस्मृति-सूत्रतन्त्रादिप्रमाणेभ्यश्चिदचिदीश्वराणां त्रयाणां स्वरूपतः स्वभावतो वैलक्षण्यं सिद्ध्यति ।

यथैतेषां त्रयाणां परस्परं वैलक्षण्यं प्रमाणसिद्धं तथैव जीवजगतो-र्ब्रह्मणा सह स्वभाविकभेदाऽभेदोऽपि प्रमाणसिद्धः । तथाहि-यतो वा इमानिभूतानिजायन्ते, येन जातानिजीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, इति श्रुतिः । अस्य भावस्तु--जगद्रूपकार्यं प्रति ब्रह्मणोऽभिन्नत्वेन निमित्त-

कारणमुपादनकरणं च मन्यते । ननु यथा घटादिरूपं कार्यं प्रति कुलालादि निमित्तकारणं भवति मृत्तिकादि चोपादानं भिन्नं भवति तथैव ब्रह्मणो निमित्त-मेव मन्तव्यं किमिति अभिन्ननिमित्तोपादानमुच्यते ? इतिचेन्न,

ब्रह्म जगदभिन्ननिमित्तोपादानकारणं भवितुमर्हति तस्य तादृशशक्तिमत्वात् जीवगतज्ञानादिकार्ये जीववत्, घटेश्वरसंयोगादिकार्ये ईश्वरवत्, इतिप्रयोगात् । यतो हि यस्मात्परब्रह्मणः पुरुषोत्तमात्, इमानि महदादि तृणपर्यन्तानि भूतानि जायन्ते, एतेन सृष्टिरुक्ता । येन परमात्मना जातानि समुत्पन्नानि भूतानि स्थिरजङ्गमानि जीवन्तिजीवनं धारयन्ति परिपुष्टानि संरक्षितानि च भवन्ति, अनेन स्थितिरुक्ता । यत्=यं परमात्मा-नमेव प्रयन्ति प्रलीना भवन्ति, अनेन प्रलय उक्तः । यद् अभिनिविशन्ति सर्वकर्मध्वंसानन्तरं प्राप्नुवन्ति इत्यनेन मोक्ष उक्तः । तथाचोक्तं पूर्वाचार्यपादैः शान्तिकान्तिगुणमन्दिरं हरिं स्थेमसृष्टिलयमोक्षकारणम् इति । सर्वोपेता चेति सूत्रप्रमाणाच्च सर्वशक्त्युपेतत्वेनजगत्कारणं ब्रह्मैव न प्रधानादि । देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढामित्यादिनाऽचिन्त्यशक्तिमत्त्वं ब्रह्मणः सुसिद्धम्। जन्माद्यस्य यतः, इति लक्षणसूत्रेणोक्तश्रुतेरभिप्रायो दर्शितः । तद्यथा-अस्य=अचिन्त्यविचित्रसंस्थानसम्पन्नस्य, असंख्यनामरूपविशेषाश्रय-स्याचिन्त्यरूपस्य विश्वस्य, जन्मादिः=सृष्टिस्थितिलयमोक्षाः, यतो यस्मात्सार्वज्ञ्याद्यनन्त कल्याणगुणराशेर्ब्रह्मेशादिनियन्तुर्भगवतः सर्वेश्वराद् भवन्तीति । तथैव अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते इत्यादि स्मृतेरप्य-यमेवभावः । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः, सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति नामानि रूपाणि यमाविशन्ति, सर्वे वेदा यत्रैकी भवन्ति, इत्यादि वाक्यकदम्बैः सर्ववेदान्त प्रतिपाद्यस्य श्रीकृष्णस्यैव जगत्कारणत्वम् । अथ चानेन ब्रह्मणा सह चिदचितोः कीदृशः सम्बन्ध इत्ययेक्षायामाह--इदं चेतनाचेतनात्मकं मूर्ताऽमूर्तं दृश्यमानं निखिलं कार्यरूपं जगत् स्वरूपतो ब्रह्मभिन्नत्वेऽपि तदभिन्नत्वमिति स्वीक्रियते । भिन्नत्वेन प्रतीयमानस्य वस्तुनोऽभिन्नत्वं कथं सङ्गच्छते ? इति शंकायामुच्यते **उभयव्यपदेशात् त्वहिकुण्डलवत्**

प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्, इति ।

उभयोर्भेदबोधकाभेदबोधकयोः श्रुतिवचनयोः समबलत्वेन परस्परं बाध्यबाधकभावो नोचितः । अतएव व्यपदेशात्=मुख्यव्यवहारात्, विशिष्टः अपदेश मुख्यव्यवहार इति व्याख्यानात् । भिन्नत्वमपि वस्तु स्वभावादभिन्नत्वेन व्यपदिश्यते-व्यवह्रियते । भगवान् पाणिनिरपि तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्, आद्यन्तवदेकस्मिन्, अन्तादिवच्च, तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, इत्येतेषुसूत्रेषु व्यपदेशिकवदेकस्मिन् , इति परिभाषांयां च स्वाभाविकद्वैताद्वैतं भेदाभेदं वा स्वीचकार । तथाहि-- एकस्मिन् स्वरितवर्णे उदात्तत्वानुदात्तत्वधर्मयोः स्थितिर्भवति, किन्तु व्यव-हर्तुर्मनसि कियानुदात्तः कुतः कियाननुदात्तः कुत इति सन्देहो जायते । तत्परिहाराय व्यवस्थाक्रियते तस्य स्वरितवर्णस्यादितः पूर्वतोऽर्धमुदात्तं बोध्यं परिशेषादुत्तरतोऽर्धमनुदात्तं ज्ञेयम् । एकस्मिन् वर्णे यथा स्वरितस्वरेणसहो-दात्तानुदात्तयोः स्वाभाविकभेदाभेदस्तथैव ब्रह्मणा चिदचितोः सम्बन्धः सुसिद्धः । आद्यन्तवदेकस्मिन्, इत्यत्रापि, एकस्मिन्वर्णे आदिवत् अन्तवत् अर्थात् अङ्गत्वं ह्रस्वत्वं च विधीयते । तेन एभ्यः आभ्यामित्यादि सिद्धयति । एवं सर्वत्र बोध्यम् ।

महाभाष्यकारो महर्षिः श्रीपतञ्जलिरपि आद्यन्तवेदकस्मिन्, इति सूत्र व्याख्याने लौकिकोदाहरणं प्रस्तौति, लोके यथा देवदत्तस्यैकः पुत्रः स एव ज्येष्ठः स एव कनिष्ठः, इति । अत एकस्मिन् परब्रह्मणि अणोरणीयान् महतो महीयान्, इत्यादि विरुद्धनानाधर्मस्य स्वीकारात् भेदाभेदः सिद्धः । यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते, नित्योनित्यानां चेतन-श्चेतनानाम्, द्वा सुपर्णा, सयुजा, सखया, इत्यादि भेदबोधिकाः श्रुतयः,

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेहनानास्ति किञ्चन, अयमात्माब्रह्म, इत्याद्यभेदबोधिकाश्च श्रुतय उपलभ्यन्ते । तासां तुल्यबलत्वमङ्गीकृत्य बाध्यबाधकभावं, अर्थवादं च परिहाय भगवता व्यासेन समन्वयरूपेण सूत्रे

चिदचितोर्ब्रह्मणा स्वाभाविकभेदाऽभेदसम्बन्धः स्वीकृतः । तथैव श्रीमन्निम्बार्काचार्यपादैस्तत्परवर्तिभिराचार्यैश्च व्याख्यातम् ।

तत्र दृष्टान्तमाह--अहिकुण्डलवत्-इति--यथा सर्पः कुण्डलीभूतः सन् कार्यत्वेन कारणत्वेन च व्यपदिश्यते तत्र स्वतन्त्र सत्ताश्रयः सर्पः निमित्तकारणं, कुण्डलीभूततच्छरीराभोग उपादानकारणीभूतपरतन्त्र सत्ताश्रयः तथैव चेतनाचेतनात्मकजगतः कार्यत्वेनापि ब्रह्मणो भिन्नाऽभिन्नत्वेन निमित्तोपादानकारणत्वं मन्यते । शक्तिविक्षेपपरिणाम एव श्रीनिम्बार्काचार्याभिमतः न तु विवर्त न वाऽन्य इति । एतदभिप्रेत्य सुदर्शनचक्रावतारैः श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यचरणैः स्वरचितवेदान्तदशश्लोक्यामुक्तम्--

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः ।
ब्रह्मात्मकत्वादितिवेदविन्मतं त्रिरूपताऽपिश्रुतिसूत्र साधिता ॥ इति

अहिकुण्डलवत्, सुवर्णालङ्कारवत्, इत्यादि निदर्शनेन अचेतनवर्गस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मणासह भेदाऽभेदसम्बन्धो भवतु नाम किन्तु चेतनवर्गस्य परमात्मना सह भेदाऽभेदसम्बन्धो न सङ्गच्छते । अतोऽनन्तेन तथाहि लिङ्गमित्यादौ जीवः अनन्तेन साम्यं प्राप्नोतीति तयोरत्यन्ताभेदप्रतीतेः इत्याशंकायामुच्यते-प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् इति । अत्र पूर्व सूत्रात् उभयव्यपदेशात् इतिपदमनुवर्तते, वा शब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । नास्ति तयोजीवब्रह्मणोरत्यन्ताभेदः । यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम् ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् परात्परं पुरुषमुपैतिदिव्यम् इत्यादौ स्वाभाविक भेदव्यपदेशात् । तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि अयमात्मा ब्रह्मेत्यादौ स्वाभाविकाऽभेदव्यपदेशाच्च जीवस्य ब्रह्मणा सह भेदाऽभेदसम्बन्धः सिद्ध्यति । तत्र दृष्टान्तं दर्शयति--प्रकाशाश्रयवत् इति । प्रकाशः सूर्याग्निप्रभारूपः आश्रयः सूर्यादिरूपः । तत्र हि प्रकाशस्याश्रयेण सह स्वभाविकौ भेदाभेदौ भवतः । प्रकाशस्याश्रयात् पृथगवस्थितेः असम्भवात् ।

न चात्यन्तभिन्नयोस्तयोरभेदे कोऽयमाग्रह इति वाच्यम्, तेजस्त्वादिति हेत्वन्तर दर्शनात् । प्रकाशाश्रययोस्तेजस्त्वाद् यथाऽभेदस्तथैवांशभूतस्य-जीवस्य अंशिना परब्रह्मणा स्वाभाविकौ भेदाऽभेदौ सिद्ध्यतः । अंशो-नानाव्यपदेशादित्यादौ उभयविधश्रुतिविरोधपरिहाराय जीव पुरुषोत्तमयोस्त-थाविधः सम्बन्ध उक्तः ।

अत्रतु तार्किकादिपक्षवत् अत्यन्तभेदपरिहाराय पुनरुक्त इति विशेषः । एवं च निर्दिष्ट श्रुतिसूत्रप्रमाणात् स्वाभाविक भेदाऽभेदसम्बन्ध एव जीवब्रह्मणोर्गरीयान् न तु अत्यन्त भेदो न वाऽत्यन्ताऽभेद इति ।

भगवता श्रीनिम्बार्काचार्येण स्वकीये दार्शनिकसिद्धान्ते चिद-चितोर्ब्रह्मणा सह यथा स्वाभाविको भेदाऽभेदसम्बन्धः स्वीकृतस्तथैव स्वोपास्यदेवस्य श्रीराधाकृष्णयुगलरूपब्रह्मणो लीलाविलासादावाकृति-भेदेऽपि वस्तुतः स्वाभाविक भेदाऽभेदत्वं प्रतिपादितम् । किन्तु तयोर्जीव-ब्रह्मणोरिव परतन्त्र-स्वतन्त्रसत्ताश्रयत्वं नास्ति । उभयोः स्वतन्त्रसत्ताश्रय-त्वमेव । तथा चोक्तं सम्मोहनतन्त्रे--एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूप-कम् । गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् । जपेद् वा ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे । इत्यादि । अन्यच्च--

योऽहं स राधा किल राधिका तथा या साऽहमेवाद्यतमः सनातनः । श्रीराधिकाकृष्णयुगं सनातनं नित्यैकरूपं निगमादिवर्जितम्, इत्यादि स्वयं श्रीकृष्णेनैवोक्तत्वात् श्रीराधाकृष्णयोरभेदत्वं सिद्धम् । तस्मान्न स्वल्पोऽपि तयोः स्वरूपांशे स्वरूपधर्मे वा भेदः । स्वरूपधर्मे स्त्रीत्वपुंस्त्वानुभवाद् धर्मकृत एव भेदः । एवमेव राधिकोपनिषदि येयं राधायश्चकृष्णोरसाब्धि-र्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्, इति मन्त्रांशे राधाकृष्णयोः स्वाभाविक भेदाऽभेदस्वरूपं सम्यक् तया निरूपितम् । अतएव जयति जयति राधा-कृष्णयुग्मं वरिष्ठं व्रतसुकृतनिधानं यत्सदैतिह्यमूलम् । विरलसुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं व्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम् । इत्याचार्योक्तिरपि पूर्वोक्तभावमेव पुष्णाति ।

चिदचितोर्ब्रह्मणा स्वाभाविकभेदाऽभेदसम्बन्धः स्वीकृतः । तथैव श्रीमन्निम्बार्काचार्यपादैस्तत्परवर्तिभिराचार्यैश्च व्याख्यातम् ।

तत्र दृष्टान्तमाह--अहिकुण्डलवत्-इति--यथा सर्पः कुण्डलीभूतः सन् कार्यत्वेन कारणत्वेन च व्यपदिश्यते तत्र स्वतन्त्र सत्ताश्रयः सर्पः निमित्तकारणं, कुण्डलीभूततच्छरीराभोग उपादानकारणीभूतपरतन्त्र सत्ताश्रयः तथैव चेतनाचेतनात्मकजगतः कार्यत्वेनापि ब्रह्मणो भिन्नाऽभिन्नत्वेन निमित्तोपादानकारणत्वं मन्यते । शक्तिविक्षेपपरिणाम एव श्रीनिम्बार्काचार्याभिमतः न तु विवर्त न वाऽन्य इति । एतदभिप्रेत्य सुदर्शनचक्रावतारैः श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यचरणैः स्वरचितवेदान्तदशश्लोक्यामुक्तम्--

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः । ब्रह्मात्मकत्वादितिवेदविन्मतं त्रिरूपताऽपिश्रुतिसूत्र साधिता ।। इति

अहिकुण्डलवत्, सुवर्णालङ्कारवत्, इत्यादि निदर्शनेन अचेतनवर्गस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मणासह भेदाऽभेदसम्बन्धो भवतु नाम किन्तु चेतनवर्गस्य परमात्मना सह भेदाऽभेदसम्बन्धो न सङ्गच्छते । अतोऽनन्तेन तथाहि लिङ्गमित्यादौ जीवः अनन्तेन साम्यं प्राप्नोतीति तयोरत्यन्ताभेदप्रतीतेः इत्याशंकायामुच्यते-प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् इति । अत्र पूर्व सूत्रात् उभयव्यपदेशात् इतिपदमनुवर्तते, वा शब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । नास्ति तयोजीवब्रह्मणोरत्यन्ताभेदः । यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम् ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् परात्परं पुरुषमुपैतिदिव्यम् इत्यादौ स्वाभाविक भेदव्यपदेशात् । तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि अयमात्मा ब्रह्मेत्यादौ स्वाभाविकाऽभेदव्यपदेशाच्च जीवस्य ब्रह्मणा सह भेदाऽभेदसम्बन्धः सिद्ध्यति । तत्र दृष्टान्तं दर्शयति--प्रकाशाश्रयवत् इति । प्रकाशः सूर्याग्निप्रभारूपः आश्रयः सूर्यादिरूपः । तत्र हि प्रकाशस्याश्रयेण सह स्वभाविकौ भेदाभेदौ भवतः । प्रकाशस्याश्रयात् पृथगवस्थितेः असम्भवात् ।

न चात्यन्तभिन्नयोस्तयोरभेदे कोऽयमाग्रह इति वाच्यम्, तेजस्त्वादिति हेत्वन्तर दर्शनात् । प्रकाशाश्रययोस्तेजस्त्वाद् यथाऽभेदस्तथैवांशभूतस्य-जीवस्य अंशिना परब्रह्मणा स्वाभाविकौ भेदाऽभेदौ सिद्ध्यतः । अंशो-नानाव्यपदेशादित्यादौ उभयविधश्रुतिविरोधपरिहाराय जीव पुरुषोत्तमयोस्तथाविधः सम्बन्ध उक्तः ।

अत्रतु तार्किकादिपक्षवत् अत्यन्तभेदपरिहाराय पुनरुक्त इति विशेषः । एवं च निर्दिष्ट श्रुतिसूत्रप्रमाणात् स्वाभाविक भेदाऽभेदसम्बन्ध एव जीवब्रह्मणोर्गरीयान् न तु अत्यन्त भेदो न वाऽत्यन्ताऽभेद इति ।

भगवता श्रीनिम्बार्काचार्येण स्वकीये दार्शनिकसिद्धान्ते चिदचितोर्ब्रह्मणा सह यथा स्वाभाविको भेदाऽभेदसम्बन्धः स्वीकृतस्तथैव स्वोपास्यदेवस्य श्रीराधाकृष्णयुगलरूपब्रह्मणो लीलाविलासादावाकृतिभेदेऽपि वस्तुतः स्वाभाविक भेदाऽभेदत्वं प्रतिपादितम् । किन्तु तयोर्जीवब्रह्मणोरिव परतन्त्र-स्वतन्त्रसत्ताश्रयत्वं नास्ति । उभयोः स्वतन्त्रसत्ताश्रयत्वमेव । तथा चोक्तं सम्मोहनतन्त्रे--एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम् । गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् । जपेद् वा ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे । इत्यादि । अन्यच्च--

योऽहं स राधा किल राधिका तथा या साऽहमेवाद्यतमः सनातनः । श्रीराधिकाकृष्णयुगं सनातनं नित्यैकरूपं निगमादिवर्जितम्, इत्यादि स्वयं श्रीकृष्णेनैवोक्तत्वात् श्रीराधाकृष्णयोरभेदत्वं सिद्धम् । तस्मान्न स्वल्पोऽपि तयोः स्वरूपांशे स्वरूपधर्मे वा भेदः । स्वरूपधर्मे स्त्रीत्वपुंस्त्वानुभवाद् धर्मकृत एव भेदः । एवमेव राधिकोपनिषदि येयं राधायश्चकृष्णोरसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्, इति मन्त्रांशे राधाकृष्णयोः स्वाभाविक भेदाऽभेदस्वरूपं सम्यक् तया निरूपितम् । अतएव जयति जयति राधाकृष्णयुगमं वरिष्ठं व्रतसुकृतनिधानं यत्सदैतिह्यमूलम् । विरलसुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं व्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम् । इत्याचार्योक्तिरपि पूर्वोक्तभावमेव पुष्णाति ।

वेदानामन्तः शिरोभाग उपनिषच्छन्दवाच्यो वेदान्त इत्यभिधीयते। उपनिषच्छब्दश्च मुख्यया वृत्या ब्रह्मविद्यामभिदधाति । उपनिषीदति परमात्मानं प्रापयतीति परमात्मविद्या, उपनिषत्पदेन व्यवह्रियते । तदेवमथर्ववेदान्तर्गता श्रीराधिकोपनिषद्--कृष्णोपनिषद्, इत्युपनिषद्द्वयी राधाकृष्णोपनिषद्, इतिरूपेण वा प्रसिद्धा वर्तते । अत्रहि श्रीराधाकृष्णयोर्नाम-रूप-लीलाधामाख्यं स्वरूपचतुष्टयं मञ्जुलतया परिवर्णितमस्ति। श्रीराधाकृष्णयोरतुलप्रभावः श्रुतिभिः स्वयमेव व्यक्तीकृतो वर्तते । श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायस्य दार्शनिकसिद्धान्तस्योपासनायाश्च स्वरूपं सारल्येन प्रतिपादितमस्ति येन निम्बार्कदर्शनशास्त्रस्याध्येतॄणां प्रथमतः प्रवेशद्वारो भविष्यतीति द्रढीयान् विश्वासः । इयमुपनिषद्द्वयी विंशतिवर्षेभ्यो माध्यमिक-शिक्षाबोर्डराजस्थान-अजयमेरुद्वारा उपाध्यायकक्षाया निम्बार्कदर्शन पाठ्यक्रमे निर्धारिताऽस्ति ।

छात्राणामध्यापकानाञ्चाध्ययनेऽध्यापने च काठिन्यमनुभूय मन्त्राणां प्रसङ्गान्वयसहिता युग्मतत्वप्रदीपिका संस्कृतव्याख्या मया विरचिता । हिन्दीभावार्थश्च सर्वेषां सौकर्याय विहितः । यदाऽहं प्रातः स्मरणीयानामनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरुश्रीनिम्बार्काचार्यपीठीधीश्वराणां श्री श्रीजी महाराजानां सेवायां व्याख्यामिमां प्रस्तुतवान् तदाऽचार्यचरणैः सहर्षं सानुग्रहं च प्रकाशनायानुज्ञा प्रदत्ता। श्रीचरणैर्नकेवलमनुज्ञैवप्रदत्ता, अपितु शुभाशीर्वचनैश्चप्रस्तुतव्याख्या विभूषिता । अस्मच्चिरञ्जीविना श्रीमुकुन्दशरणउपाध्यायेन सोत्साहं भूमिकां विलिख्यास्या वैशिष्ट्यं प्रदर्शितम् । विद्वद्वरेण्यैर्निम्बार्कभूषणैः पं० श्रीदयाशंकरशास्त्रि-महोदयैः स्वकीय शुभसम्मत्या च प्रस्तुत व्याख्याया उपयोगिता प्रकटीकृता । इयं कृतिः विदुषां मुदे, विद्यार्थिनां हिताय, सर्वेषामन्येषां सुखबोधाय भूयादिति निवेदयति-

--वासुदेवशरणउपाध्यायः

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

अथर्ववेदीय-श्रीराधाकृष्णोपनिषद्

सानुवाद-युग्मतत्त्वप्रदीपिकाख्यायाव्याख्ययालंकृता

मंगलाचरण-

सन्मानससरोहंसौ कुञ्जकेलिकलाविदौ ।
राधासर्वेश्वरौ वन्दे भेदाऽभेदस्वरूपिणौ ॥१॥
निम्बार्काचार्यपादाब्जं तापत्रयविनाशनम् ।
नत्वाचार्यांश्च कुर्वेऽहं युग्मतत्त्वप्रदीपिकाम् ॥२॥

तत्रादौ राधिकोपनिषद् व्याख्यायते--

इयं राधिकोपनिषद् अथर्ववेदान्तर्गतास्ति । अस्यामुपनिषदि श्रीराधिकाया अलौकिकं सर्वोत्कृष्टं च महत्वं प्रतिपादितमस्ति । एकदा ब्रह्मवादिनो महर्षयः श्रीराधिकायाः सर्वोपास्यत्वं भावयन्तः परस्परं जिज्ञासापरा बभूवुः, यत् सत्सु विविध कर्मफलदातृषु देवेषु देवीषु च सतीषु किमर्थं राधिकामेवोपासते रसिका इति । एवं तेषु जिज्ञासापरवशेषु तत्रैकं तेजः पुञ्जमाविर्बभूव । स तेजोराशिः श्रुतीनां समूह एवासीत् । एताः श्रुतयो महर्षीणां सन्देहं निवारयन्त्यः श्रीराधिकायाः सर्वजननीत्व-सर्वशक्तित्व-सर्वाधारत्व-सर्वैश्वर्यत्व-सर्वाह्लादकत्वादि निखिल दिव्य गुणान् व्याचचक्षिरे -

एतदभिप्रेत्योपनिषद आरम्भे उक्तम्--

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, कस्माद् राधिकामुपासते, आदित्यो अभ्यद्रवत् ॥१॥

व्याख्या--ब्रह्मवादिनः=शब्द ब्रह्मपरब्रह्मोपासका महर्षयः, वदन्ति=कथयन्ति। अत्र ब्रह्मशब्देन शब्द ब्रह्मपरब्रह्मोभयं गृह्यते। अर्थात् ब्रह्म वेदं परमात्मानं च वदन्ति तच्छीला इत्यर्थे ब्रह्मोपपदाद्-वद्धातोस्ताच्छील्यार्थे णिनि प्रत्यये अनुबन्ध लोपे उपधावृद्धौ स्वादि कार्ये ब्रह्मवादिन इति शब्दो निष्पन्नः। तेन शास्त्रज्ञाने परमात्मज्ञाने च निष्णाता मुनय इति निष्कर्षः। तथा चोक्तम् भागवते--

शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान् खलु इति। एवं च शास्त्र ज्ञान पूर्वकं परब्रह्मोपासनं विधेयमित्यौपनिषदानां सिद्धान्तः।

महर्षयः किं कथयन्ति ? इत्यपेक्षयामाह कस्मात् कारणात् (रसिकाः) राधिकाम्=वृन्दावनाधीश्वरीं वृषभानुसुतारूपेणावतीर्णां श्रीराधिकामेव सर्वात्मभावेन उपासते=आराधयन्ति ?। इत्थं तेषां मुनीनां मनसि जिज्ञासा समुत्पन्ना राधातत्त्वविषये। तेषां जिज्ञासा-शान्तये साक्षात् श्रुति-समूहो दिशो विदिशश्च प्रकाशयन्, आदित्यः= सूर्यवत् प्रकाशः, ज्ञानस्य प्रकाशरूपत्वं प्रसिद्धम्, अभ्यद्रवत्=समक्षे आविरासीत्। अभि पूर्वकात् द्रुगतौ इत्यस्माद् धातोर्लङि प्रथमपुरुषै-कवचने रूपमेतत्।

हिन्दी भावार्थ--यह उपनिषद् अथर्ववेद के अन्तर्गत है। इस उपनिषद् में श्रीराधिका के अलौकिक एवं सर्वोत्कृष्ट महत्व प्रतिपादित हैं। एक समय ब्रह्मज्ञानी महर्षियों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई विविध कर्मफलों के दाता अनेक देवी देवताओं के रहते परम भागवत रसिक महानुभाव सर्वात्मभाव से श्रीराधिका की ही आराधना क्यों करते हैं ?

इस प्रकार उन महात्माओं के मन में परस्पर जिज्ञासा होने पर वहां एक प्रकाश पुञ्ज प्रकट हुआ। वह प्रकाश पुञ्ज वेद मन्त्रों का ही समूह था। ऋषि-मुनियों की शंका का निराकरण करती हुई श्रुतियाँ श्रीराधिका के अनन्त दिव्य गुणों की व्याख्या करने लगी। यहाँ पर ब्रह्म शब्द शब्दब्रह्म और परब्रह्म दोनों का वाचक है। अतः शास्त्र ज्ञान पूर्वक परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए यह आचार्यों का सिद्धान्त है ॥१॥

उपनिषच्छाब्दार्थः--

उपनिषद् शब्दश्च मुख्यया वृत्या ब्रह्मविद्यामभिदधाति। तथाहि-उप-नि पूर्वकात् विशरणगत्यवसादनार्थकात् षद्लृ धातोः अनुबन्धलोपे क्विपि उपनिषद् इति निष्पद्यते। उपनिषीदति विशीर्यते संसारबन्धनं यस्याः सकाशात् सा उपनिषत् परमात्मविद्या कथ्यते। अथवा-उपनिषीदति परमात्मानं प्रापयति वा परमात्मविद्या सा उपनिषद्। तत्सम्बन्धाद् ग्रन्थोऽपि उपनिषद् इति व्यवह्रियते।

वेदान्तशब्दार्थः--

वेदानामन्तःशिरोभाग उपनिषद्शब्दवाच्यो वेदान्त इत्य-भिधीयते। शारीरकमीमांसा शास्त्ररूप-ब्रह्म-सूत्राणि च वेदान्त पद वाच्यानि। साक्षाद् भगवदुपदिष्टत्वाद् गीताशास्त्रमपि वेदान्त इति। एवं च-उपनिषद् ब्रह्मसूत्र स्मृतिरूपगीताशास्त्राणां प्रस्थानत्रयीति व्यवहारः। अतो भगवतः स्वरूपगुणशक्त्यादिपरिज्ञानाय श्रुतिस्मृतिसूत्राण्येव प्रमाणम्, तेषां वेदान्तपद वाच्यत्वादिति।

श्रुतय ऊचुः-सर्वाणि राधिकाया दैवतानि सर्वाणि भूतानि राधिकायास्तां नमामः ॥२॥

अस्मिन् मन्त्रे श्रीराधिकायाः सर्वजननीत्वं निगद्यते ।

अन्वय-श्रुतय ऊचुः सर्वाणि दैवतानि राधिकायाः (आविर्भूतानि) सर्वाणि भूतानि च राधिकायाः (आविर्भूतानि) तां नमामः ।

व्याख्या-श्रुतय ऊचुः-ऋचः कथयन्ति, श्रुतीनां नित्यत्वात् सार्वकालिकक्रियाऽभिप्रायेणपरोक्षभूतकालनिर्देशः । बहुलं छन्दसि, इति नियमात् वर्तमाने भविष्यत्काले च प्रयोगो युज्यते । सर्वाणि=निखिलानि, दैवतानि=देवतत्त्वानि (देवतायाभाव इत्यर्थे, अण् प्रत्यये दैवतमिति) उपास्य देवेषु यानि यानि शक्तिमन्ति तत्त्वानि तानि, राधिकायाः= श्रीकृषणस्य प्रेमाधिष्ठात्र्याः शक्त्याः सकाशात् (आविर्भवन्तीति-तात्पर्यार्थः) सर्वाणि भूतानि च=अशेषचराचरजगन्ति च राधिकायाः सकाशादेव (आविर्भूतानि) एवं राधायाः सर्वजननीत्वमिति प्रतिपाद्य श्रुतयः कथयन्ति यत् तदङ्गीभूता वयम्, ताम्=राधिकाम्, नमामः= वन्दामहे इति ॥२॥

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में श्रीराधा को समस्त देवों तथा स्थावर जङ्गमरूप सकल जगत् की जननी बताया है । श्रुतियाँ कहती हैं यहाँ पर यद्यपि ऊचुः पद से परोक्ष भूतकाल का निर्देश है तथापि बहुलं छन्दसि-इस सूत्र के नियम से वैदिक प्रयोगों में काल व्यत्यय किंवा सार्वकालिक प्रयोग हुआ करते हैं । क्योंकि श्रुतियाँ नित्य हैं, अतः नित्य वस्तु में काल व्यवच्छेद मान्य नहीं है । उपास्य देवों में जो-जो शक्तिमान् तत्त्व हैं वह सब राधिका से ही प्रादुर्भूत हैं । इसी प्रकार चर-अचर समस्त जगत् में जो विलक्षण शक्तियुक्त है वह भी सब श्रीराधा से ही उत्पन्न है । अर्थात् श्रीराधा त्रिलोक की जननी है यही श्रुतियों का तात्पर्य है । श्रुतियाँ कहती हैं-कि हम भी उन्हीं की अङ्गभूता हैं अतः उन राधिका को सदा नमन करती हैं ॥२॥

देवतायतनानि कम्पन्ते राधाया हसन्ति नृत्यन्ति च सर्वाणि राधादैवतानि । सर्वपापक्षयायेति व्याहृतिभि र्हुत्वाऽथ राधिकायै नमामः ॥३॥

अस्मिन् मन्त्रे यस्या अनुग्रहेण देवानां प्रसन्नता रोषेण च कम्पनं भवति तस्याः श्रीराधायाः स्तवनं परिवर्णितमस्ति-

अन्वयः--राधायाः (कृपालेशेन) राधा दैवतानि सर्वाणि देवतायतनानि हसन्ति नृत्यन्ति च अथ (यस्याः किञ्चिद्भ्रूभङ्गमात्रेण) कम्पन्ते (अतः) सर्वपापक्षयाय व्याहृतिभिः हुत्वा राधिकायै नमाम इति ।

व्याख्या--श्रुतयः कथयन्ति यत् राधायाः=श्रीकृष्णस्यापि आराध्याया आह्लादिनीशक्त्याः कृपालेशेन, राधा दैवतानि=राधादैवतं येषां तानि राधादैवतानि राधामेव सर्वतोभावेन समाराधयन्ति यानि तानि सर्वाणि=ब्रह्मरुद्रेन्द्रादीनि देवतायतनानि=देववृन्दानि, अत्राऽयतनशब्दः समूहवाचकः अथवा धामधामिनोरभेदविवक्षया निजस्थानसहितादेवा इति भावः हसन्ति नृत्यन्ति च=सहर्षं नरीनृत्यन्ते । अथ च यस्याः किञ्चिद् भ्रूभङ्गमात्रेण कम्पन्ते=बिभ्यति, भीता भवन्ति । अतो वयं श्रुतयः सर्वपापक्षयाय=लौकिककायिकवाचिकमानसिकादिसकलदोषक्षयाय हुत्वा=ह्वयन्त्यः स्तुवन्त्य, शत्रर्थेक्त्वा प्रत्ययः । राधिकायै= राधिका-मनुकूलयितुम्, नमामः=वन्दामहे , इति ॥३॥

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में राधिका के अनुग्रह-निग्रह में देवताओं की स्थिति का वर्णन किया है । श्रुतियाँ कहती हैं--श्रीराधा के कृपालेश से सर्वात्मभाव से राधा की आराधना करने वाले सपरिकर देवगण बड़ी प्रसन्नता से नाचते हैं किन्तु किञ्चित् भ्रूभङ्ग मात्र से थर-थर कांपते हैं । अतः हम श्रुतियाँ भी सकल दोष परिहार के लिए भूर्भुवः स्वः आदि

व्याहृतियों के साथ स्तवन करती हुई उन्हें सदा अनुकूल करने के लिए वन्दना करती हैं ॥३॥

भासा यस्याः कृष्णदेहोऽपि गौरो जायते देवस्येन्द्रनील-प्रभस्य। भृङ्गाः काकाः कोकिलाश्चादि गौरास्तां राधिकां विश्वधात्रीं नमामः ॥४॥

अस्मिन् मन्त्रे राधिकायाः प्रभावं वर्णयन्ति श्रुतयः ।

अन्वयः--यस्याः भासा इन्द्रनीलप्रभस्य देवस्य कृष्णदेहः अपि गौरो जायते, भृङ्गाः काकाः कोकिलाः च अपि गौराः (जायन्ते) विश्वधात्रीं तां नमामः ।

व्याख्या--यस्याः=वृषभानुजाया निकुञ्जेश्वर्याः श्रीराधायाः, भासा=तेजसा दीप्त्यावा, (भासृदीप्तौ इत्यस्माद् धातोः क्विपि तृतीयान्तं रूपमेतत्) इन्द्रनीलप्रभस्य=इन्द्रनीलस्य एतन्नामकमणेः प्रभा इव प्रभा यस्य तस्य नीलमणितुल्यकान्तेः, देवस्य=दीव्यरूपस्य प्रभोः श्रीकृष्णस्य, कृष्णदेहः=कृष्णश्चासौदेहः श्यामविग्रहः अपि गौरः=काञ्चनवदुज्वलः, जायते=भवति। कृष्णस्य गौरत्वे न राधायाः प्रभावः तस्य सर्वेश्वरत्वादिति नाशङ्कनीयम् लीलाविभूतौ शक्तेः प्राधान्यमिति द्योतयितुमियमुक्तिः । किञ्च भृङ्गाः=भ्रमराः, काकाः=वायसाः, कोकिलाः=पिकाः, चेति समुच्चये, अपि एतादृशाः क्रूराः क्षुद्रा अपि प्राणिनः गौराः=काञ्चनवर्णाः जायन्ते किमुत कृष्णदेह इति । अतः विश्वधात्रीम्=सकल जगतो धारण-पोषणकर्त्रीम्, ताम्=विलक्षणप्रभावां महाभावरूपाम्, श्रीराधिकाम्=श्रीकृष्णस्यापि समाराध्यां नमामः=वन्दामहे, इति श्रुतयः कथयन्ति ॥४॥

विश्वधात्री--धारणपोषणार्थकाद् धाधातोः कर्तरि तृच् प्रत्यये स्त्रियां ऋन्नेभ्योङीप् इति ङीपि यणि च धात्री शब्दो निष्पद्यते । अस्य च धारणपोषणकर्त्रीत्यर्थः । विश्वस्य धात्री इति विग्रहे कर्तृकर्मणोः कृति इति विहितकर्मषष्ठ्या समासः, एवं च सकलजगत आधार शक्तिः श्रीराधिकैवेति श्रुत्याशयः ।

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में राधिका के प्रभाव का वर्णन है । नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा के दिव्य तेज से इन्द्रनीलमणि के समान श्रीकृष्ण का श्याम-विग्रह भी गौरवर्ण का हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वेश्वर हैं कुछ भी बन सकते हैं इसमें राधा का क्या प्रभाव है ? ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि लीला विभूति में शक्ति की प्रधानता बतलाने हेतु ऐसा कहा गया है । रास-महारास आदि लीला विहार में आह्लादिनी शक्ति की ही मुख्यता रसिकाचार्यों ने स्वीकार की है । श्रुतियाँ और भी बताती हैं कि भ्रमर, मोर, कौवे और कोयल जैसे प्राणी भी वृन्दावन निकुञ्ज में श्रीराधा का सान्निध्य प्राप्त होने पर सब काञ्चनवत् गौरवर्ण के हो जाते हैं तो श्रीकृष्ण का श्याम-विग्रह गौर हो जाये तो इसमें क्या आश्चर्य ? अतः सकल जगत् का धारण पोषण करने वाली महाभाव स्वरूपा श्रीकृष्ण की भी आराध्यरूपा उन राधिका को हम सदा वन्दन करती हैं । ऐसा श्रुतियों का कथन है ॥४॥

यस्या अगम्यतां श्रुतयः सांख्ययोगा वेदान्तानि ब्रह्मभावं वदन्ति। न यां पुराणानि विन्दन्ति सम्यक् तां राधिकां देवधात्रीं नमामः ॥५॥

अस्मिन् मन्त्रे श्रीराधिकाया अगाधतां ब्रह्मभावं च श्रुतयः प्रतिपादयन्ति ।

अन्वयः--श्रुतयः सांख्ययोगाः वेदान्तानि यस्याः अगम्यतां ब्रह्मभावं (च) वदन्ति । यां पुराणानि सम्यक् न विन्दन्ति देवधात्रीं तां राधिकां नमामः ।

व्याख्या--श्रुतयः=वेदमन्त्राः (ऋचश्चेति) सांख्ययोगा=सांख्य श्च योगश्च सांख्य योगौ (अत्र वचन व्यत्ययः) सांख्य शास्त्रं प्रधान कारणवादः, योगाः=यम नियमासन-प्राणायाम प्रत्याहार ध्यानधारणा-समाधिरूपाष्टांगयोगप्रतिपादकं योग-शास्त्रम् । एतदुपलक्षणं न्याय-वैशेषिक-मीमांसानामपि, वेदान्तानि=उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र-स्मृतिरूप-प्रस्थानत्रयीवर्णित वचनानि (च) यस्याः=श्रीराधिकायाः अगम्यताम्= अगाधताम्, (गन्तुं योग्यं गम्यं(ज्ञेयं) न गम्यं अगम्यमिति नञ समासः । अगम्यस्य भावः अगम्यता तां दुर्बोध्यामिति यावत्) ब्रह्मभावम्=ब्रह्म तत्त्वं च वदन्ति=कथयन्ति । पुराणानि=ब्रह्माद्यष्टादशपुराणानि (मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् अ-ना-प-लिं-ग-कू-स्कानि पुराणानि प्रचक्षते इत्युक्तेः) च याम्=राधिकाम् सम्यक्=सम्यक् प्रकारेण यथार्थत इति यावत्, न विन्दन्ति=नैव प्राप्तुं शक्नुवन्ति, ताम् पूर्वोक्त गुणगणालंकृताम् देवधात्रीम्-देवमातरम् श्रीराधिकाम् (वयं) नमामः वन्दामहे इति ॥५।

देवधात्रीम्--धात्री शब्द पूर्ववत् । देवानां धात्रीति कर्मषष्ठ्या समासः-देवमाता इति शब्दार्थः । निखिलशक्तीनां जननीत्वेन देवानामपि जननीत्वं सुसिद्धम् । यथा जननी स्वसन्ततिं सर्वविधरूपेण रक्षति पोषयति तथैव श्रीराधापि देवोपलक्षितं निखिलं जगद् रक्षति पोषयति चेति श्रुतीनामाशयः ।

हिन्दी भावार्थ--ऋग्-यजुः सामाथर्वादि चारों वेदों के मन्त्र सांख्यशास्त्र जो प्रकृति को कारण बताता है और योग शास्त्र जो यम नियमादि योगाङ्गों का प्रतिपादक शास्त्र है, ये दोनों न्याय-वैशेषिक-मीमांसा के भी उपलक्षक हैं । उपलक्षण वचन होता है स्वबोधकत्वे सति स्वेतर बोधकत्वम् अर्थात् जो शब्द स्वयं के अर्थ का बोधक होता हुआ दूसरे स्वजातीय शब्दों का अर्थ बोधक हो उसे उपलक्षण कहते हैं । उपनिषद् ब्रह्मसूत्र गीतादिस्मृतिशास्त्र को प्रस्थानत्रयी कहते हैं ये हि वेदान्तदर्शन के वाचक हैं इस प्रकार वेद मन्त्र सांख्ययोगादि दर्शन और वेदान्त वचन भी जिस राधिका की अगम्यता और उनको ब्रह्मतत्त्व के रूप में प्रतिपादित करते हैं । इसी प्रकार वेदव्यास रचित अष्टादशपुराण भी जिनको यथार्थ रूप में प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसी अनन्त कल्याणगुणमयी देवमाता श्रीराधिका को हम सब श्रुतियाँ सर्वातमभाव से नमन करती हैं । श्रीराधिका देवोपलक्षित निखिल जगत् की जननी हैं, जिस प्रकार साधारण जननी अपनी सन्तान को सब प्रकार से पालन पोषण करती है उसी प्रकार श्रीराधा भी समस्त जगत् का पालन-पोषण करती हैं यह श्रुतियों का आशय है ।

जगद्भर्तुर्विश्वसम्मोहनस्य श्रीकृष्णस्य प्राणतोऽधिकामपि ।
वृन्दारण्ये स्वेष्टदेवीं च नित्यं तां राधिकां वनधात्रीं नमामः ॥६॥

अस्मिन् मन्त्रे विश्वम्भरोऽपि श्रीकृष्णः श्रीराधां समाराधयति इति श्रुतयो निर्दिशन्ति ।

अन्वयः--जगद्भर्तुः विश्वसम्मोहनस्य श्रीकृष्णस्य प्राणत अपि अधिकाम् वृन्दारण्ये स्वेष्टदेवीम् च (सः) नित्यम् (समुपास्ते) वनधात्रीम् ताम् राधिकाम् नमामः ।

व्याख्या--जगद्भर्तुः=विश्वम्भरस्य (भरतीतिभर्ता, जगतः भर्ता इति कर्म-षष्ठ्याः समासः) विश्वसम्मोहनस्य=चराचर निखिल जगन्मुग्धकारिणः (विश्वंसम्मोहयति इत्यर्थे नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः इति ल्युप्रत्यये अनादेशे षष्ठ्यन्तं पदमेतत्-श्रीकृष्णस्य=श्रिया युक्तः कृष्णः श्रीकृष्णः अथवा श्रीमाँश्चासौ कृष्णः श्रीकृष्णः तस्य श्रीकृष्णस्य सच्चिदानन्दस्य भगवतः श्रीसर्वेश्वरस्य, प्राणतः=प्राणेभ्यः अपि अधिकाम्=अतिशयप्रियाम्, वृन्दारण्ये= वृन्दावनान्तर्गतनित्यनिकुञ्जे स्वेष्टदेवीम्=स्वकीयाराध्यदेवतारूपाम् (सः=भगवान् जगदीशः समुपास्ते=समाराधयति) अतः श्रीकृष्णस्याऽपि आराध्याम् वनधात्रीम्= वृन्दावनाधीश्वरीम्, ताम्=सुप्रसिद्धाम्-राधिकाम्=कृष्णवल्लभां राधाम् (वयम्) नमामः=वन्दामहे इति ।

वनधात्रीम्--धात्री शब्दः पूर्ववत् । वनस्य धात्रीतिकर्मषष्ठ्या समासः । अत्र वन शब्दो वृन्दावनोपलक्षकः । धातूनामनेकार्थत्वाद्-धाधातोः धारणपोषणातिरिक्त ऐश्वर्यार्थोऽपि सिद्धयति । अतः धात्री शब्देनात्र ईश्वरी इति विवक्षितः । तस्माद् वनधात्रीति पदस्य वृन्दावनेश्वरीति पदार्थः सिद्धयतीति श्रुतीनां तात्पर्यम् ।

हिन्दी भावार्थ--विश्व का भरण पोषण करने वाले चराचर निखिल जगत् को अपने लोकोत्तर सौन्दर्य माधुर्य से मुग्ध करने वाले सच्चिदानन्द भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की प्राण से भी प्यारी वृन्दावन के निभृत निकुञ्ज में आराध्यस्वरूप जिन राधिका की वे जगदीश्वर सदा समाराधन करते हैं उन वृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधा को हम सभी वन्दना करती हैं । धातुओं के अनेकार्थ होने के कारण यहाँ पर धा धातु का धारण पोषण के अतिरिक्त ऐश्वर्यार्थ भी स्वीकार किया गया है अतः धात्री शब्द का अर्थ इश्वरी बना । एतावता वनधात्री पद का अर्थ

वृन्दावनाधीश्वरी निष्पन्न हुआ । वन शब्द वृन्दावन का उपलक्षक होने से उक्तार्थ की संगति बनती है । यह श्रुतियों का तात्पर्य है ॥६॥

यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः स्रस्तवेणुःकबरीं न स्मरेद् यल्लीनः कृष्णः क्रीतवत्तु तां नमाम ॥७॥

अस्मिन् मन्त्रे श्रीकृष्णस्य श्रीराधायाः प्रेमपारवश्यं परिवर्ण्यते।

अन्वयः--विश्वभर्ता प्रेमयुक्तः यस्याः पादयोः रेणुं रहसि मूर्ध्नि धरते यत् लीनः कृष्णः स्रस्तवेणुः (सन्) कबरीं न स्मरेत् तु क्रीतवत् (जायते) तां नमामः ।

व्याख्या--विश्वभर्ता=विश्वस्य जगतो भर्ता पोषकः विश्वम्भरो इति यावत्, प्रेमयुक्तः=प्रीतिसंवलितः यस्याः=श्रीराधायाः, पादयोः=चरणयोः रेणुम्=धूलिम्, रहसि निभृतनिकुञ्जे मूर्ध्नि=शिरसि, धरते=दधाति, यल्लीनः=यस्यामत्यासक्तः कृष्णः=नन्दनन्दनः, स्रस्तवेणुः=स्रस्तः पतितः वेणुः वंशी यस्मात् स पतितवंशिकः (सन्) कबरीम् किरीटमुकुटादिकम् न स्मरेत्=न जानाति, तु=किन्तु क्रीतवत्=दासवत् तदधीनो जायते, ताम्=श्रीकृष्ण वशकारिणीं राधिकाम् नमामः=वन्दामहे । एतदभिप्रेत्य राधासुधानिधिकारैरुक्तम्--

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यैरालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य । सद्यो वशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि । श्रीमन्निम्बार्काचार्येणापि प्रातःस्तवराजे-**प्रेमातुरेण हरिणा सुविशारदेन श्रीमद्व्रजेशतनयेन सदाऽभिवन्द्यम्** इत्युक्तम् ।

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में श्रीकृष्ण का श्रीराधा के प्रेमाधीन होना बताया गया है । सम्पूर्ण चराचर जगत् के पोषक भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमाधीन होकर जिन राधा की चरण धूली को एकान्त निकुञ्ज स्थल में

अपने शिर पर धारण करते हैं और जिनके प्रीत्यतिशय के कारण अपने शिरोभूषण भूतल पर गिरते हुए भी स्मरण नहीं करते करकमल में विराजमान मुरली भी अवनि पर गिर रही है । उन्हें स्मरण नहीं है इस प्रकार प्रेमाशक्त हो वे श्रीराधा के अधीन हो जाते हैं ऐसी वशकारिणी श्रीराधा की हम वन्दना करती हैं । इसी मन्त्र के भाव को स्पष्ट करते हुए श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं, जो निखिल ब्रह्माण्डाधिपति सर्व नियन्ता सर्वान्तर्यामी श्रीसर्वेश्वर, ब्रह्मा-रुद्र शुक-नारद-भीष्मादि देव मुनि भागवतों के भी कभी सहसा साक्षात् दृष्टिगोचर नहीं होते उन पुराणपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को तत्काल वश में करने वाली अनन्त शक्तिशाली श्रीराधा-चरणरेणु का मैं नित्य स्मरण करता हूँ । श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य ने भी प्रातःस्तवराज में श्रीमद्व्रजेन्द्रनन्दन, विविधलीलाविदग्ध, लीला-पुरुषोत्तम श्रीहरि ने प्रेमविह्वल होकर जिनके चरणों का सदा अभिवन्दन करते हैं, ऐसा कहा है ॥७॥

यस्याः क्रीडां चन्द्रमा देव पत्न्यो दृष्ट्वा मग्ना आत्मनो न स्मरन्ति । वृन्दारण्ये स्थावरा जङ्गमाश्च भावाविष्ठां राधिकां तां नमामः ॥८॥

प्रसङ्ग--अस्मिन् मन्त्रे श्रीराधाया महाभाव स्वरूपं प्रतिपादयन्ति श्रुतयः ।

अन्वयः--वृन्दारण्ये यस्याः क्रीडां दृष्ट्वा चन्द्रमाः देवपत्न्यः मग्नाः आत्मनः न स्मरन्ति स्थावराः जङ्गमाश्च (आत्मनः न स्मरन्ति) भावाविष्ठां तां राधिकां नमामः ।

व्याख्या--वृन्दारण्ये=श्रीवृन्दावन धाम्नि नित्यनिकुञ्जे यस्याः=श्रीवृषभानुनन्दिन्याः, क्रीडाम्=विविधकेलिकलाम् लीलाविलासम् इति यावत्, दृष्ट्वा=विलोक्य, चन्द्रमाः=शशी (जगतः प्रियदर्शनः सौन्दर्यराशिः) देवपत्न्यः=घृताची=मेनका-रम्भा उर्वशी-तिलोत्तमाप्रभृतयः सकल कला निपुणाः देवाङ्गनाः मग्नाः=आनन्द सिन्धु निमग्नाः (आनन्दिताः सत्यः) आत्मनः=स्वस्वरूपमपि, न स्मरन्ति= नावगच्छन्ति, न केवलं चन्द्रादयः अपितु स्थावराः=निश्चला वृक्षलतौषधयः भूधराश्च, जङ्गमाः=गमनशीलाः पशुपक्षिनागकिन्नर-मानवाश्चेतनधर्माः अपि आत्मनो न स्मरन्ति । इतश्च स्वयं श्रीराधापि श्रीकृष्णस्नेहसिक्ता अत एव भावाविष्ठाम्=महाभावस्वरूपाम्, ताम्=पूर्वोक्तगुणगणविशिष्टां श्रीराधिकाम्=श्रीकृष्णवल्लभाम्, नमामः=वन्दामहे ॥८॥

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में श्रीराधा के महाभावस्वरूप का वर्णन किया गया है । श्रुतियाँ कहती हैं वृन्दावन नित्यलीला स्थली निकुञ्ज में जिनके लीला विलास को देखकर जगत् का प्रियदर्शन सौन्दर्य राशि चन्द्रमा और घृताची-मेनका-रम्भा-उर्वशी-तिलोत्तमा आदि देवरमणी अप्सराएँ भी आनन्द सिन्धु में डूबते हुए अपने आप को भूल जाती हैं और उनका जगत् को विमुग्ध करने का अभिमान चूर हो जाता है । चन्द्र एवं देवाङ्गना ही नहीं अपितु समस्त जडचेतनात्मक जगत् भी भावमग्न होकर अपने स्वरूप को भूल जाता है । इधर स्वयं श्रीराधा भी श्रीकृष्ण के अगाध स्नेह में निमग्न होकर भावविह्वल हो जाती हैं अतएव ऐसी महाभाव स्वरूपा सकल गुणगणनिधान कृष्ण वल्लभा श्रीराधिका को हम श्रुतियाँ सदा नमन करती हैं और यह अभिलाषा करती हैं कि उनका कृपाकटाक्ष हमारी ओर भी हो ॥८॥

यस्या अङ्के विलुण्ठन् कृष्णदेवो गोलोकाख्यं नैव सस्मार धाम । पदं सांशा कमला शैल पुत्री तां राधिकां शक्तिधात्रीं नमामः ॥९॥

प्रसङ्ग--अस्मिन् मन्त्रे सर्वासां शक्तीनां जननी श्रीराधिकास्ति, इति श्रुतयः प्रतिपादयन्ति ।

अन्वयः--यस्या अङ्के विलुण्ठन् कृष्णदेवः गोलोकख्यं धाम पदं नैव सस्मार । कमला, शैलपुत्री (अपि) यस्याः सांशा तां शक्तिधात्रीं राधिकां नमामः ॥

व्याख्या--यस्याः=श्रीराधिकायाः, अङ्के=क्रोडरूपशय्यायाम्, विलुण्ठन्=प्रेमाकुलीभूय स्थितः सन्, कृष्णदेवः=सच्चिदानन्दः श्रीकृष्णः, गोलोकाख्यम्=त्रिपाद्विभूतिरूपं अप्राकृतं निजं धाम पदम्=स्वर्गादधिकं स्थानम्, नैव सस्मार=नैव जानाति स्म अर्थात् न गणयति स्म । कमला=ऐश्वर्याधिष्ठात्री भगवती लक्ष्मीः, शैलपुत्री=महिषासुरमर्दिनी पराम्बा पार्वती (दुर्गा इति यावत्) अपि सांशा=यस्या अंश भूता अर्थात् लक्ष्मी-दुर्गाप्रभृतीनां निखिलशक्तिनां जननी इत्यर्थः । ताम्=कृष्णप्रियाम्, शक्तिधात्रीम्=सकलशक्तिमातरम्, राधिकाम्=आह्लादिनीशक्तिम्, नमामः=वन्दामहे । शक्तिधात्रीम्= इत्यत्र धात्री शब्दस्य निष्पत्ति पूर्ववत् शक्तीनां धात्रीति कर्मषष्ठ्या समासः ॥९॥

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में श्रीराधिका को समस्त शक्तियों की जननी (अंशिनी) कहा गया है । श्रुतियाँ कहती हैं लीला विभूति में जिन वृषभानुनन्दिनी की अङ्करूपी शय्या में विराजमान लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अपने नित्य त्रिपाद् विभूति रूप अप्राकृत धाम परम पद गोलोक का स्मरण नहीं करते, सदा प्रेमानन्द में निमग्न रहते हैं । ऐश्वर्याधिष्ठात्री भगवती लक्ष्मी और पराम्बा पार्वती दुर्गा भी जिनकी अंश भूता हैं अर्थात् राधा से ही उनका आविर्भाव हुआ है इनके अतिरिक्त जितनी भी शक्तियाँ हैं सब उन्हीं से प्रकट होती हैं । ऐसी समस्त शक्तियों की माता श्रीकृष्णप्रिया राधिका को हम सब नमन करती हैं ॥९॥

स्वरैर्ग्रामैस्त्रिभिर्मूर्च्छनाभिर्गीतां देवीं सखीभिः प्रेम-बद्धा । वृन्दारण्ये या तनोदेकशक्त्या ब्राह्मीं निशां तां राधिकां नमामः ॥१०॥

प्रसङ्ग--अस्मिन् मन्त्रे रङ्गदेवीललितादिकाः सख्यः लयताल सहितैः सङ्गीतमयैर्भावै राधिकां स्तुवन्ति इति श्रुतयः कथयन्ति ।

अन्वयः--स्वरैः त्रिभिः ग्रामैः मूर्च्छनाभिश्च (सह) सखीभिः गीतां देवीं (भावयन्ति रसिकाः) वृन्दारण्ये प्रेमबद्धा या एक शक्त्या ब्राह्मीं निशां अतनोत् तां राधिकां नमामः ॥

व्याख्या--स्वरैः=षड्ज-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादैः (लोके सा रे ग म प ध नि इत्यक्षर निर्दिष्टैः सप्तभिः स्वरैः, वेदे च उदात्तानुदात्तस्वरितैः त्रिभिः स्वरैः षड्जादीनां त्रिष्वेवान्त-र्भावः) त्रिभिः ग्रामैः=षड्जमध्यमगान्धाररूपैः मूर्च्छनाभिः=एकविंशत्या मूर्च्छनाभिरारोहावरोहरणनरूपैः (सह) सखीभिः=रङ्गदेवी ललिता-प्रभृतिसहचरीभिः, गीताम्=स्तुताम्, देवीम्=ज्योतिः स्वरूपाम् (रसिका भावयन्ति) वृन्दारण्ये=वृन्दावन धाम्नि महारास प्रसङ्गे या=रासेश्वरी श्रीराधा, प्रेमबद्धा=प्रीतियुक्ता प्रसन्नासतीतियावत् एकशक्त्या स्वकीय-योगमायारूपयैक शक्त्या, निशाम्=मानुषीं रात्रिम्, ब्राह्मीम्=ब्रह्मरात्रि-तुल्याम् (ब्रह्मरात्रिश्च सहस्रचतुर्युगपरिमिता शास्त्रप्रमाणात्) अतनोत्=विस्तारयामास, ताम्=योगमायाधीश्वरीम्, राधिकाम्=नित्य-निकुञ्जेश्वरीं वृषभानुनन्दिनीम् नमामः=वन्दामहे ।

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में रङ्गदेवी-सुदेवी-ललिता आदि सहचरियाँ स्वर लयताल सहित संगीतमय भावों द्वारा नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधिका की स्तुति करती हैं यह भाव दर्शाया गया है । श्रुतियाँ कहती

हैं षड्जादि सात स्वरों, षड्ज-गान्धार-मध्यम रूप तीनों ग्रामों आरोहा-वरोहरणन आदि इक्कीस मूर्च्छनाओं के साथ दिव्य संगीतमय भावों से सहचरीवृन्द श्रीराधा की स्तुति करती हैं। ऐसी सखीजन सेवित ज्योति स्वरूपा श्रीराधा का रसिकजन सदा भावनायुक्त हो ध्यान करते हैं। जो रासेश्वरी श्रीराधा श्रीवृन्दावनधाम में महारासलीला के प्रसङ्ग में परम प्रसन्नता के साथ अपनी योगमाया रूप एक शक्ति से एक मानुषी रात्रि को सहस्रचतुर्युग-स्वरूप ब्राह्मी रात्रि का विस्तार प्रदान करती हैं। ऐसी योगमायाधीश्वरी निकुञ्जविहारिणी श्रीराधा की हम श्रुतियाँ वन्दना करती हैं ॥१०॥

क्वचिद् भूत्वाद्विभुजा कृष्णदेहा वन्शीरन्ध्रैर्वादयामासचक्रे। यस्या भूषां कुन्दमन्दारपुष्पैर्मालां कृत्वाऽनुनयद् देवदेवः ॥११॥

प्रसंग--अस्मिन् मन्त्रे श्रीराधाया लीलाविहारं वर्णयन्ति श्रुतयः।

अन्वयः--क्वचिद् कृष्णदेहा द्विभुजा भूत्वा वंशीरन्ध्रैः वादयामास, देवदेवः कुन्दमन्दारपुष्पैः मालां कृत्वा यस्याः भूषां चक्रे अनुनयत् (च)।

व्याख्या--क्वचिद्=लीलाविहारप्रसङ्गे, कृष्णदेहा=कृष्णस्य देहइवदेहो यस्या कृष्णदेहधारिणी, द्विभुजा=द्वौ भुजौ यस्या सा द्विबाहुभूता मुरलीधरासती, वंशीरन्ध्रैः=अधरस्थिताया वंश्याः रन्ध्रेषु छिद्रेषु न्यस्तांगुली राधा सप्तभिः स्वरै वादयामास=नादयामास वादनं चकारेति यावत्। देवदेवः=देवानां ब्रह्मरुद्रेन्द्रादीनामपि देव आराध्यः श्रीकृष्णः, कुन्दमन्दारपुष्पैः कुन्दपारिजातकुसुमैः, मालाम्=स्रजम् कृत्वा=विधाय,यस्याः=श्रीराधिकायाः, भूषाम्-अलङ्कारं, चक्रे-विदधे,

(एवं शृङ्गारं विधाय रसिकशिरोमणिः श्रीकृष्णस्ताम्) अनुनयच्च=सेवक इव अनुनय विनयं च व्यदधात्। अत्र अडभावश्छान्दसः ॥११॥

हिन्दी भावार्थ--श्रुतियाँ कहती हैं--किसी समय लीलाविहार प्रसङ्ग में स्वयं द्विभुजरूप में श्रीकृष्ण का स्वरूप धारण कर अपने कर कमल स्थित वंशी को अधर पर स्थापित कर वंशीछिद्रों पर सप्त स्वरों का आलाप करती हैं। उधर ब्रह्मरुद्रेन्द्रादि देवों के भी आराध्य भगवान् सर्वेश्वर रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण कुन्द-परिजात आदि दिव्य पुष्पों से माला का निर्माण कर जिनका अलौकिक शृङ्गारकरते हैं और अलंकृत कर जिनके समक्ष सेवक की तरह नाना प्रकार से अनुनय विनय भी करते हैं। ऐसी श्रीकृष्णाराध्या श्रीराधिका को हम सदा नमन करती हैं। (अनुनयत्) इस पद में अडागम का अभाव बहुलं छन्दसि इस नियम से समझना ॥११॥

मूल--**ये यं राधा यश्चकृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्। देहो यथा छायया शोभमानः शृण्वन् पठन् तद् याति शुद्धं च धाम ॥१२॥**

प्रसङ्ग--अस्मिन् मन्त्रे राधाकृष्णयोः भिन्नाभिन्नत्वं प्रतिपाद्यते।

अन्वयः--या इयं राधा यश्च कृष्णः रसाब्धिः देहश्च एकः क्रीडानार्थं द्विधा अभूत्। यथा देहः छायया शोभमानः (भवति) शृण्वन्, पठन् तत् शुद्धं धाम याति।

व्याख्या--या इयम्=सकललोकवेदप्रसिद्धा, राधा=भक्तवत्सला कृष्णवल्लभा आह्लादिनी शक्तिरितियावत्, यश्च=विश्वम्भरः श्रीकृष्णः=सच्चिदानन्दः परं ब्रह्म (उभौ) रसाब्धिः=नामरूप--

लीलाधाम सिन्धुः (सागरभूतौ) इति अनयो राधा कृष्णयोः देहः विग्रहस्तु एकः=एक एव क्रीडनार्थम्=लीलाविहारार्थम्, द्विधागौरश्यामतेजोरूपेण द्विविधः अभूत्=आविरासीत्, उक्तं च -

राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणम् ।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदा भजे ॥

अन्यच्च-एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधव रूपकम् इति देहः=आकृतिमतां शरीरम्, यथा=येन प्रकारेण छायया=आकृत्या शोभमानः (भवति) शोभते तथैव अनयोः स्वरूपमपि छाया शरीरवत् भिन्नमभिन्नमस्ति । यद्यपि समुद्रतरङ्गवत् इत्युपमा ब्रह्मणि न धटते तथापि विवक्षितां शमात्रमादय तथा गृह्यते तथाहि यदा श्रीकृष्णः समुद्र इव धीरगम्भीररूपेणावतिष्ठते तदा श्रीराधा तरङ्गवल्लोलायमाना विराजते, यदा च राधा समुद्रवत् धीरगम्भीरा भवति तदा श्रीकृष्णस्तरङ्ग इव चञ्चलो जायते उभौ रससिन्धुस्वरूपौ चेतनाचेतनात्मक विश्वस्य नियन्तारौ सर्वेश्वरौ स्तः । अतः पूर्वोक्त द्वैविध्यं तयोः सङ्गतम् । समुद्रस्तु प्राकृतोऽचेतनः तस्मात् समुद्रः स्वस्वरूपैणैवावस्थातुं शक्नोति तरङ्गश्च तरङ्गरूपेणेतिं विभावनीयम् । एवं राधाकृष्णयो र्भेदाभेदत्वं प्रतिपाद्य फलं निर्दिशति- यः साधकः इमामुप निषदम् श्रद्धापूर्वकं श्रृण्वन्=श्रृणोति पठन्=पठति (प्रत्यय-व्यत्ययश्छान्दसः) स साधकः तत्=तदीयं शुद्धं=दिव्यं अप्राकृतं धाम=पदम् परमं पदम् भगवद्भावापत्तिरूपं याति=प्राप्नोति इति श्रुत्याशयः ।

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में नित्यनिकुञ्जबिहारी युगलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण की भिन्नाभिन्नता दिखाई गई है । जो सकल लोक वेद में प्रसिद्ध परमवात्सल्यमयी भगवान् श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा हैं और जो विश्व का भरण पोषण करने वाले सच्चिदानन्द परब्रह्म

श्रीकृष्ण हैं । ये दोनों नामरूप लीलाधामरूपी रस के सागर हैं अतः इन दोनों का श्रीविग्रह रूपगुणशील से तो एक ही है किन्तु लीला विहार के लिए गौरतेज और श्याम तेज से नार्याकृति तथा नराकृति रूप में भिन्न रूप से आविर्भूत हुए हैं । कहा भी है श्रीराधा कृष्णस्वरूप हैं और श्रीकृष्ण राधारूप हैं दोनों अनन्त कलाओं का साकार रूप हैं उन नित्य स्वरूप निकुञ्ज स्थित राधामाधव को मैं सर्वतोभावेन नवनवायमान लीलाओं के समुपदेशक रूप में सेवा करता हूँ । और भी कहा है--एक ही दिव्य ज्योति श्रीराधामाधव युगल रूप में प्रकट हुई है, आकृति वालों का शरीर छाया की तरह भिन्न और अभिन्न है ।

यद्यपि समुद्र तरङ्गवत् यह उपमा ब्रह्म में घटित नहीं हो सकती तथापि विवक्षित विषय के एक भाग को लेकर भी उपमा ग्रहण की जाती है । जब श्रीकृष्ण समुद्र की तरह धीर गम्भीर बन जाते हैं । तब श्रीराधा तरङ्ग समान परम चञ्चल हो जाती हैं और जब श्रीराधा धीर गम्भीर बनती हैं तब श्रीकृष्ण तरङ्ग समान चञ्चल हो उठते हैं ये दोनों रस के सागर, चेतनाचेतनात्मक जगत् के नियन्ता और सर्वेश्वर हैं इसलिए दोनों की ब्रह्मरूपता तथा भिन्नाभिन्नता सिद्ध होती है । समुद्र तो प्राकृत जड़ है अतः वह अपने स्वरूप से ही रह सकता है और तरङ्ग भी तरङ्गरूप से ही रहता है वह समुद्र नहीं बन सकता इस प्रकार श्रीराधाकृष्ण की भिन्ना-भिन्नता का प्रतिपादन कर अब फल का निर्देश करते हैं जो साधक इस उपनिषद् को श्रद्धा पूर्वक सुनता, पढता है वह प्रभु के उस दिव्य अप्राकृत धाम गोलोकादि को प्राप्त कर भगवद्भावापत्तिरूप परमानन्द का अनुभव करता है ।

वशिष्ठं च वृहस्पतिं चार्वागध्याययति । यजमानस्य बार्हस्पत्यश्च ॥१३॥

प्रसङ्ग--अस्या उपनिषद्विद्याया गुरुपरम्परा निर्दिश्यते ।

अन्वय--अर्वाक् वशिष्ठं बृहस्पतिं च अध्यापयति, बृहस्पतिः यजमानस्य बार्हस्पत्यं च (अध्यापयति) ।

व्याख्या--भगवान् भास्करः, अथवा भास्करोपलक्षितः साक्षात्परं ब्रह्म भगवान् सर्वेश्वरः वशिष्ठम्=ब्रह्मपुत्रं महर्षिम् इमाम्=ब्रह्मविद्याम्, अध्यापयति=अध्यापयामास (बहुलं छन्दसि, इति काल व्यत्ययः) अर्वाक्=तदनन्तरम् महर्षिवशिष्ठश्च आङ्गिरसं बृहस्पतिम्=देवगुरुम् अध्यापयामास, स च भगवान् बृहस्पतिः=यजमानस्य=यजमानं देवराजमिन्द्रं सर्वान् देवाँश्च (अध्यापयामास द्वितीयार्थे षष्ठी विभक्तिः छान्दसत्वाद् विभक्ति व्यत्ययो वा । तथैव स्वपुत्राय कचायापि इमां विद्यामुपदिष्टवान् । इत्थं श्रीराधाया महत्वं प्रतिपादयन्त्यो श्रुतयः ऋषीणां मनसि जायमानं सन्देहं निवारयामासुरित्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी भावार्थ--इस ऋचा में उपनिषद् विद्या की गुरु परम्परा बतायी गई । भगवान् भास्कर ने ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ और देवगुरु बृहस्पति को और बृहस्पति ने देवराज इन्द्र और अपने पुत्र को पढाया । इस प्रकार श्रुतियों ने श्रीराधा की महत्ता प्रतिपादन कर महर्षियों के सन्देह को दूर किया ।

॥ इति राधिकोपनिषद् ॥

॥ अथ कृष्णोपनिषद् ॥

सन्दर्भ--श्रीकृष्णोपनिषद् अथर्ववेदान्तर्गताऽस्ति । अस्यामुपनिषदि श्रीकृष्णस्य सर्वोपास्यत्वं सर्वनियन्तृत्वं च प्रतिपादयन्ति श्रुतयः । एकदा दण्डकारण्य-वासिनो मुनयः प्रियदर्शनं राजीवलोचनं श्रीरामचन्द्रं विलोक्य मुग्धा बभूवुः । ते भगवन्तं प्रार्थितवन्तो यद् भगवन् वयं कान्तभावेन भवन्तमुपासितुं वाञ्छामः । तानुवाच भगवान् श्रीरामः, अयं मे मर्यादावतारः । अस्मिन् समये भवताममिलाषः पूर्णो न भविष्यति । यदा द्वापरान्ते लीलावताररूपेण श्रीकृष्णो भूत्वाऽवतरिष्यामि तदा भवन्तो गोपिका भूत्वा मामुपासितारः । एतच्छ्रुत्वा महर्षयो देवाश्च कालं प्रतीक्ष्यमाणा ऊषुः । द्वापरान्ते ते सर्वे गोपा गोपिकाश्च भूत्वा व्रजमवतीर्णाः । तत्र लीला विहारिणं श्रीकृष्णं सर्वात्मभावेन समुपासत, इति

मूल--**श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः ॥१॥**

प्रसङ्ग--अस्मिन् मन्त्र वाक्ये भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य भुवनमोहनं सौन्दर्य निर्दिश्यते ।

अन्वयः--वनवासिनः मुनयः श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं सर्वाङ्गसुन्दरं रामचन्दं दृष्ट्वा विस्मिता बभूवुः ।

व्याख्या--वनवासिनः=दण्डकारण्यवासिनः (वने वसन्ति तच्छीला इत्यर्थे णिनि प्रत्यये वनवासिन इति) मुनयः=मननशीला ऋषयः (मन्तारो वेदशास्त्रस्यतत्त्वावगन्तार इति मुनयः) श्रीमहाविष्णुम्=महाश्र्चासौ विष्णुः महाविष्णुः श्रिया सहितो महाविष्णुः

श्रीमहाविष्णुस्तं स्वकीयानपायिनीशक्तिसहितं नारयणम् । पुनः कीदृशम् सच्चिदानन्द-लक्षणम् =सत् चित् आनन्दश्च लक्षणानि रूपं यस्य तं चराचरनिखिल-जगदात्मस्वरूपं परमात्मानम् । सर्वाङ्गसुन्दरम्=सर्वाणि च तान्यङ्गानि सर्वाङ्गाणि सुन्दराणि यस्य तं सर्वाङ्गसुन्दरं सर्वावयव-मनोहरम्, रामचन्द्रम्=दशरथनन्दनरूपेणावतीर्णं श्रीरामचन्द्रं, दृष्ट्वा=अवलोक्य, विस्मिताः=आश्चर्ययुक्ताः, बभूवुः=अभवन् (आसुरितिवा)।

हिन्दी भावार्थ--यह उपनिषद् अथर्ववेद के अन्तर्गत है इसमें भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण का सर्वोपास्यत्व एवं सर्वनियन्तृत्व भाव बताया गया है । एक समय दण्ड कारण्यवासी मुनिजन सर्वाङ्ग सुन्दर सौन्दर्य-सिन्धु श्रीराम को देखकर मोहित हो गये तथा प्रार्थना करने लगे प्रभो ! हम सब आपको कान्तभाव से भजना चाहते हैं । अतः हम अपने तपोबल से स्त्रीरूप धारण कर सीताजी की तरह आपके साथ रहना चाहते हैं । यह सुनकर भगवान् श्रीराम मुस्कराते हुए बोले महात्माओं ! यह मेरा मर्यादावतार है इस समय सीता के अतिरिक्त किसी स्त्री को प्रेयसी भाव से नहीं देख सकता । अतः आप लोगों की इच्छा अभी पूर्ण नहीं होगी इसके लिए समय की प्रतीक्षा करनी होगी । जब द्वापरान्त में कृष्णावतार धारण कर व्रज में अवतीर्ण होऊँगा तब आप सभी गोपिका बन कर मेरी उपासना करेंगे । यह सुनकर समस्त ऋषि मुनि देवगण भी प्रसन्न होकर समय की प्रतीक्षा करने लगे । वे सब द्वापरान्त में गोप-गोपियाँ बनकर व्रज में आये । वहाँ लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण की सर्वात्मभाव से उपासना करने लगे ।

इस मन्त्र वाक्य में भगवान् श्रीरामचन्द्र के अनिर्वचनीय लोकोत्तर लावण्य का वर्णन किया गया है । जब एक समय वनवास प्रसङ्ग में सीता

लक्ष्मण सहित भगवान् श्रीराम दण्डकारण्य पहुँचे तब वहाँ दीर्घकाल से तपश्चर्या में निरत महर्षियों ने सर्वाङ्ग सुन्दर सच्चिदानन्दरूप महाविष्णु नारायण को अपनी अनपायिनी ऐश्वर्य-माधुर्य-आह्लादिनी शक्ति जानकी के साथ देखा तो वे अत्यन्त मुग्ध हो गये और प्रार्थना करने लगे ।

मूल--**तं हो चुर्नोऽवद्यमवतारान् वै गण्यन्ते, आलिङ्गामो भवन्तमिति ॥२॥**

प्रसङ्ग--अस्मिन् वाक्ये मुनयः श्रीरामं कान्तभावेनोपासितुं प्रार्थयामासुरिति वर्णितमस्ति ।

अन्वयः--तं ह ऊचुः अवतारान् वै नो अवद्यं गण्यन्ते, भवन्तं आलिङ्गाम इति ।

व्याख्या--तम्=दण्डकारण्यविहारिणं श्रीरामम् (मुनयः) ह= स्पष्टम्, ऊचुः=कथयामासुः, अवतारान्=सर्वेभ्योऽवतारेभ्यः श्रेष्ठमिमं रामावतारम् (छान्दसो वचनव्यत्ययः) वै=निश्चयेन, अवद्यम्=दोषरहितम्, गण्यन्ते=गणयन्ति मनीषिणः । (अत्र कर्तरि वाच्ये कर्म प्रत्ययः) अतएव वयं कान्तभावेन भवन्तम्=सर्वस्य प्रेष्ठं त्वाम्, आलिङ्गामः=प्रियावत् अङ्गसङ्गेन सेवामहे, इति ।

हिन्दी भावार्थ--समस्त ऋषि मुनियों ने दण्डकारण्य में विहार करते हुए श्रीराम से कहा-भगवन् आपका यह अवतार अन्य अवतारों से श्रेष्ठ एवं दोष रहित है । अतः हम आपकी भगवती सीता की तरह रहकर अङ्गसङ्ग पूर्वक उपासना करना चाहते हैं ।

मूल--**भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ । अन्ये ये अवतारास्ते हि गोपान् स्त्रीश्च नो कुरु ॥३॥**

प्रसङ्ग--अस्मिन् वाक्ये भगवान् श्रीरामो मुनीन् मधुरं सान्त्वयति, इति निगद्यते ।

अन्वयः--भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मां आलिङ्गथ, अन्ये ये अवताराः ते हि गोपान् स्त्रीः च नो कुरु ।

व्याख्या--परमदयालुर्भगवान् मुनीश्वरान् आश्वासयन् उवाच हे मुनयः । भवान्तरे=द्वापरान्ते, कृष्णावतारे=कृष्णजन्मनि लीलाविहारप्रसङ्गे , यूयम्=भवन्तः, गोपिका भूत्वा=व्रजगोपीनां रूपं धृत्वा, माम्=सर्वेषां प्राणिनामेकवल्लभं प्रियतमम्, आलिङ्गथ=अङ्ग सङ्गं करिष्यथ (छान्दसोकालव्यत्यः) अन्येष्ववतारेषु यद् यद् कार्यमवशिष्टं तस्य सर्वस्य परिपूर्तिः कृष्णावतार एव भविष्यति । अवतारस्य पूर्णत्वेऽपि मे मर्यादारूपोऽयम्, कृष्णावतारस्तु लीलारूपत्वेन सकल भक्तानां मनोरथ सिद्धये समर्थ इति । अतः अन्ये ये अवताराः=मत्स्यकूर्मवराह नृसिंहादयः अंशकलापूर्णा अपि भक्तानां सकल भावनानां रक्षणं कर्तुं न पारयन्ति, कृष्णावतारस्तु सर्वसमर्थस्तस्माद् भवन्तः सर्वे द्वापरान्ते गोपान्=आत्मनो गोपरूपधारिणः स्त्रीश्च=गोपिकाश्च कुरु=विधत्त । (अत्र वचन व्यत्ययः) ।

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र वाक्य में परमदयालु भगवान् श्रीराम उन समस्त मुनीश्वरों को आश्वासन अथवा सान्त्वना देते हुए कहते है--हे मुनीश्वरो ! द्वापरान्त में आप सब अपने आपको गोप-गोपिका का रूप बनाकर व्रजभूमि में रहेंगे, मैं जब कृष्णावतार धारण कर नानाविध लीला विहार करूँगा तब आप गोपीरूप से समस्त प्राणियों का प्रियतम मेरा आलिङ्गन कर अङ्ग सङ्ग करेंगे । अन्य अवतारों में जो जो कार्य अवशिष्ट रहे हैं उन सबकी पूर्ति कृष्णावतार में ही हो सकेगी । अवतार की पूर्णता होने पर भी मेरा यह रामरूप मर्यादा में आबद्ध है । कृष्णरूप

तो लीलामय होने से सकल की सर्वविध मनोरथ सिद्धि के लिए स्वतन्त्र है । अतः अन्य मत्स्य-कूर्म-नृसिंहादि अवतार अंश कला पूर्ण होने से भी सभी भक्तों की सकल भावनाओं को पूर्ण नहीं कर पाते किन्तु कृष्णावतार तो सर्व समर्थ है । क्योंकि यह पूर्णतम अवतार है । कहा भी है--एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, इत्यादि ॥३॥

मूल--**अन्योन्यविग्रहं धार्यं तवाङ्गस्पर्शनादिह ।**
शश्वत्स्पर्शयिताऽस्माकं गृह्णीमोऽवतारान् वयम् ॥४॥

प्रसङ्ग--अस्मिन्नंशे मुनयः श्रीरामाज्ञां शिरोधार्यं कृत्वा गोपगोपिरूपेणावतरितुं स्वीचक्रुरित्याह--

अन्वयः--इह तवाङ्गस्पर्शनात्, अन्योन्य विग्रहं (अस्माभिः) धार्यम्, अस्माकं शश्वत् स्पर्शयिता, वयं अवतारान् गृह्णीमः ।

व्याख्या--इह-अस्मिन् दण्डकारण्ये, तव=भवतः, अङ्गस्पर्शनात्=श्रीविग्रहस्पर्शनात् दर्शनाच्चास्माकं दुरितं दुरीभूतम् अतः, अन्योन्यविग्रहम्=परस्परशरीरम्, धार्यम्=धारणं कर्त्तव्यमस्माभिरित्यर्थः । तदा भवान् श्रीकृष्णरूपः अस्माकम्=गोपगोपीनाम् ऋषिरूपाणामपि (अङ्गम्) शश्वत्=अनवरतम्, स्पर्शयिता=अङ्गसंगकर्त्ता इति । (ण्यन्त स्पृश धातो र्लुटि रूपमेतत्) वयम्=सर्वे वनवासिनो मुनयः श्रीकृष्णरूप भवतः सेवार्थम्, अवतारान् गृह्णीमः=स्व-स्वांशरूपेण गोपगोपिका भूत्वाऽवतरिष्यामः । (छान्दसः कालव्यत्ययः) ।

हिन्दी भावार्थ--प्रभो इस परम पावन दण्डकारण्य प्रदेश में आपके श्रीविग्रह का दर्शन और स्पर्श पाकर हमारे जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कलपान्तर के कल्मष दूर हो गये हैं अतः हमें परस्पर गोप-गोपियों का शरीर धारण करना चाहिए । उस समय आप श्रीकृष्णरूप

में हम सब ऋषिरूपा गोपियों का निरन्तर अङ्ग स्पर्श करेंगे । एतदर्थ हम सभी वनवासी मुनिजन श्रीकृष्ण स्वरूप आपकी सर्वतोभावेन सेवा के लिए अपने-अपने अंशरूप से गोप-गोपी बनकर व्रज में अवतीर्ण होंगे । (इन्हीं साधनसिद्ध गोपियों का एक मण्डल जो ऋषिरूपा गोपियाँ कहलाती हैं उन्हें प्रभु का नित्य सान्निध्य प्राप्त है, कात्यायनी व्रत करने वाली गोपियाँ इनमें सम्मिलित नहीं हैं ऐसा सन्तों का कथन है ।।४।।

मूल -- **रुद्रादीनां वचः श्रुत्वा प्रोवाच भगवान् स्वयम् ।**

अङ्ग सङ्गं करिष्यामि भवद्वाक्यं करोम्यहम् ।।५।।

प्रसङ्गः-अस्मिन् मन्त्रे भगवान् श्रीरामो रुद्रादि देवान् कथयति ।

अन्वयः--रुद्रादीनां वचः श्रुत्वा भगवान् स्वयं प्रोवाच अहं (भवताम्) अङ्ग सङ्गं करिष्यामि भवद् वाक्यं (च) करोमि ।

व्याख्या-यथा दण्डकारण्य वासिनो मुनयः सेवायै श्रीरामं प्रार्थितवन्तस्तथैव विधिशिव-पुरन्दरादयो देवश्रेष्ठा अपि कान्तभावेन सेवितुं तं न्यवेदिषुः तथाहि-रुद्रादीनां=रुद्र आदिर्येषां ते रुद्रादयः शिव-विरिञ्चिमहेन्द्रादयस्तेषाम्, वचः=वचनम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, भगवान्= षडैश्वर्य सम्पन्नः श्रीरामचन्द्रः स्वयम्=साक्षात् (षडैश्वर्यञ्च-ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा) भगोऽस्यास्तीत्यर्थे भगशब्दान्मतुपि रूपमेतद् भगवानिति । प्रोवाच=कथयामास (हे देवाः) कृष्णावतारेऽवश्यमेवाहं भवताम्, अङ्ग सङ्गं=अङ्गस्पर्शनम्, परस्पर लीलाविहारं वा, करिष्यामि=विधास्यामि तथा च भवद् वाक्यम्=भवतां कथनं च, करोमि=स्वीकरिष्यामि अथवा सम्प्रति प्रतिजाने इत्याशयः ।

हिन्दी भावार्थ--जिस प्रकार दण्डकारण्यवासी मुनियों ने सेवा के लिए श्रीराम से प्रार्थना की उसी प्रकार भगवान् रुद्र, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवों ने भी उनकी कान्तभाव से सेवा करने की प्रार्थना की तब भगवान् स्वयं उन देव श्रेष्ठों के वचन सुनकर कहने लगे हे देवेश्वरो ! द्वापरान्त के समय कृष्णावतार में अवश्य ही मैं आपके साथ लीला विहार करूँगा और आपकी प्रार्थना के अनुरूप ही व्यवहार करूँगा । यह मैं आपको वचन दे रहा हूँ । यहाँ भगवान् शब्द के विषय में विचार किया जाता है--

षडैश्वर्य सम्पन्न को भगवान् कहते हैं वे षडैश्वर्य अर्थात् ६ तत्व कौन हैं ? इस विषय में शास्त्र बतलाते हैं-समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य इन छः तत्त्व के समुदाय को भग कहा जाता है, जिसके पास वह परिपूर्ण रूप से विद्यमान हो उसे ही भगवान् कहते हैं । भगशब्द से मतुप् प्रत्यय करने पर यह शब्द निष्पन्न होता है ।।५।।

मूल--**मोदितास्ते सुराः सर्वे कृतकृत्याऽधुना वयम् । यो नन्दः परमानन्दो यशोदा मुक्ति गेहिनी ।।६।।**

अन्वयः--ते सर्वे सुराः मोदिताः (ऊचुः) वयम् अधुना कृतकृत्याः यः नन्दः (सः) परमानन्दः (अस्ति) यशोदा (च) मुक्ति गेहिनी (अस्ति) ।

व्याख्या--रुद्रादयो देवाः श्रीरामचन्द्रं कान्तभावेनोपासितु-मैच्छन्, द्वापरान्ते कृष्णावतारे तेषामभिलाषः पूर्णो भविष्यतीति रामस्ते-भ्यो वरं ददौ, तदाकर्ण्य ते=प्रसिद्धाः, सर्वे सुराः=विधिशिवादयः सर्वे देवाः, मोदिताः=प्रमुदिताः सन्त ऊचुः, भगवन् । वयम्=रुद्रपुरोगा देवाः, अधुना=साम्प्रतम्, भवदनुग्रहं लब्ध्वा, कृतकृत्याः=कृतं कृत्यं यैस्ते कृत कृत्याः कृतार्थाः सञ्जाताः इति ।

अथात्र नन्दयशोदयोः पूर्वस्वरूपं वर्ण्यते, तथाहि-यः=व्रजेश्वरः, नन्दः=एतन्नामकोगोपः श्रीकृष्णस्य जनक इति यावत्, सः परमानन्दः=परब्रह्मणो भगवतो महाविष्णोरनिर्वचनीय आनन्द एवा-

सीत् । या च यशोदा=नन्दपत्नी श्रीकृष्णजननी सा साक्षात् मुक्ति-गेहिनी=मुक्तिरूपा (आसीत्) एवं च साक्षादानन्द एव नन्दरूपेण मुक्तिश्च यशोदारूपेण भूतलेऽवतीर्णावित्याशयः ।

हिन्दी भावार्थ--रुद्रादि देवों ने कान्तभाव से श्रीराम की उपासना करने की इच्छा प्रकट की । द्वापरान्त में कृष्णावतार के अवसर पर उनकी इच्छा पूर्ण होगी ऐसा श्रीराम ने उन सबको वरदान दिया, तदनन्तर वे त्रिभुवन प्रसिद्ध विधि-शिव-पुरन्दरादि सभी देवेश्वर परम प्रसन्न होकर बोले हे भगवन् ! इस समय आपका अनुग्रह पाकर हम सब कृत कृत्य हो गये हैं । (यहाँ तक का प्रसङ्ग ऋषि महर्षि देवगणों के साथ श्रीरामचन्द्र के वार्तालाप से सम्बन्धित है, अब इसके बाद नन्द यशोदादि गोप-गोपियों के पूर्व स्वरूप का वर्णन है) जैसे कि--

जो व्रज में नन्द गोप के नाम से प्रसिद्ध श्रीकृष्ण के पिता और व्रजवासियों के स्वामी हैं वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा का आनन्द अर्थात् ब्रह्मानन्द का ही रूप है । उसी प्रकार जो नन्द पत्नी श्रीकृष्ण की माता यशोदा हैं वह साक्षात् मुक्तिरूपा है । इस प्रकार साक्षात् आनन्द ही नन्द रूप से और मुक्ति ही यशोदा के रूप से भूतल में अवतीर्ण हुए हैं ऐसा मन्त्र का आशय है ।

मूल -- **माया सा त्रिविधा प्रोक्ता सत्वराजसतामसी।**
प्रोक्ता च सात्विकी रुद्रे भक्ते ब्रह्मणि राजसी ।।७।।
तामसी दैत्यपक्षेषु माया त्रेधा ह्युदा हृता ।
अजेया वैष्णवी माया जाप्येन च सुता पुरा ।।८।।

प्रसङ्गः-- अस्मिन् मन्त्रयुगमे भगवतो मायायाः सात्विक-राजस-तामसभेदेन त्रैविध्यं दर्शयति, सा च कुत्र-कुत्र विराजते इत्यपि निर्दिश्यते--

अन्वयः--सा माया सत्व-राजस-तामसी (इति) त्रिविधा प्रोक्ता (तथा च) भक्ते रुद्रे सात्विकी ब्रह्मणि राजसी दैत्यपक्षेषु तामसी प्रोक्ता (एवं) हि माया त्रेधा उदाहृता, अजेया वैष्णवी माया (अपि) पुरा (मुनिभिः) जाप्येन सुता (कृता) ।

व्याख्या--सा=जगत्प्रसिद्धा, माया=अघटनघटनापटीयसी अविद्या कर्मात्मिका भगवतो मायाशक्तिः सत्वराजस तामसी=सात्विकी राजसी तामसीति गुणत्रय विभेदेन त्रिविधा=त्रिस्वरूपा, प्रोक्ता=कथिता श्रुतिभिरिति-शेषः । तथा च सा=त्रिविधाऽपि माया, भक्ते=परम भागवते वैष्णवे, रुद्रे=शम्भौ वैष्णवानां यथा शम्भुः, इति भागवत वचनात्, सात्विकी= सत्वगुणरूपा माया, ब्रह्मणि=जगत्स्रष्टरि लोकपितामहे विधातरि, राजसी=रजोगुणयुक्ता, ब्रह्मणोरजोगुणप्राधान्यात्, दैत्य-पक्षेषु=तमोगुणा-हंकारप्रधानेष्वसुरेषु, तामसी=तमोगुणरूपामाया, प्रोक्ताः=प्रकर्षेण कथिता श्रुतिभिर्मुनिभिश्च । एवं हिः=यतः, माया= वैष्णवी माया, त्रेधा=त्रिप्रकारा, (प्रायः) अजेया=जेतुमशक्या समुदाहृता। दुर्जेयाऽपि वैष्णवी माया=विष्णोः शक्तिरूपा प्रकृतिः पुराः= पूर्वस्मिन् काले भगवच्छरणापन्नैर्महर्षिभिः प्रह्लादविभीषणादिपरम-भागवतैश्च, जाप्येन=अनन्यतया मन्त्रानुष्ठान पूर्वक भगवदाराधनया, जपयज्ञेन वा सुता=पुत्रीव वशीकृतेति तथा चोक्तं भगवता **देवीह्येषा-गुणमयी मम माया दुरत्यया, मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते** । इति।

हिन्दी भावार्थ--वह जगत्प्रसिद्ध अघटन घटनापटीयसी अविद्या कर्मात्मिका भगवन्माया सात्विकी, राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार की बतायी गयी है । वह सात्विक रूप से भगवान् शिव में, रजोगुणरूप से ब्रह्मदेव में एवं तमोगुणी अहंकारी दैत्यों में तामसी रूप से विद्यमान रहती है । वह तीनों गुणवाली भगवत् शक्तिरूपा प्रकृति यद्यपि देवताओं के

लिए भी अजेय है तथापि पहले भगवत् शरणापन्न महर्षि एवं प्रह्लाद विभीषण आदि परम भागवत वैष्णवों ने अपनी अनन्यरूप आराधना तथा मन्त्रजपा-नुष्ठानादिदिव्यिसाधनों से माया को पुत्री के समान वश में कर लिया था । आज भी ऐसे महाभागवतजन सतत साधना में निरत रहकर इस जागतिक चकाचौंध से दूर रहते हैं । इसी को मायासंतरण कहा गया है ।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं आज्ञा करते हैं यद्यपि यह मेरी वैष्णवी माया किसी के द्वारा जीती नहीं जा सकती, क्योंकि वह अविद्या कर्मात्मिका त्रिगुणात्मिका है, सांसारिक जन भी त्रिगुण से आबद्ध हैं तथापि जो विवेकी जन अनन्य भाव से मेरे शरणापन्न होते हैं वे ही मेरी कृपा से इस माया को जीत सकते हैं ॥७-८॥

मूल -- **देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरुपगीयते ।**
निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः रामकृष्णयोः ॥६॥

सन्दर्भ:--सच्चिदानन्दः परमात्मा भगवान् श्रीसर्वेश्वरः स्वलीलाविभूतौ नित्यान्तरङ्गबहिरङ्गादि पार्षदान् सहचरी सहचररूपेणा-वतारयति । कामक्रोधादिविकार जाताँश्च स्वविरोधिरूपेणावतारयति तेषामपि नित्यत्वात् । एतदभि प्रेत्योत्तरत्र मन्त्रेषु श्रीकृष्णस्य सर्वनियन्तृत्वं सर्वान्तिर्यामित्वं, सर्वाधारत्वं, सर्वेश्वरत्वं, सर्वज्ञत्वं, निखिलजगदभिन्न-निमित्तोपादान कारणत्वं ब्रह्मात्मकत्वं च प्रतिपादयन्ति श्रुतयः । अस्मिन् मन्त्रे देवकी-वसुदेवयोर्वेदत्वं रामकृष्णयोश्च वेदार्थत्वं निगद्यते ।

अन्वयः-या ब्रह्मपुत्रा वेदैरुपगीयते सा देवकी यः निगमः (सः) वसुदेवः, (यश्च) वेदार्थः(सः) रामकृष्णयोः (स्वरूपेणा-वतीर्ण इति ।

व्याख्या--या=सर्वोपास्या, ब्रह्मपुत्रा=ब्रह्मणः पुत्रीति ब्रह्मपुत्रा सरस्वती, गायत्री वा (अत्रटाप् छान्दसः) वेदैः=ऋग् यजुःसामाथर्वगतै-

र्वेदमन्त्रैः उपगीयते=स्तूयते, उपपूर्वकात् गै शब्दे इत्यस्माद्धातोः कर्मणि लटि रूपमेतत् । चतुर्ष्वपि वेदेषु गायत्र्याः समानानुपूर्वीरूपेणपाठदर्शनाद् वेदोपगायनं युक्तम् ।सा=वेद प्रसिद्धा गायत्री साक्षात् देवकी=वसुदेवपत्नी रामकृष्णजननी रूपेणावतीर्णेति यः=शब्द ब्रह्मात्मको निगमः=वेदसमूहः (सः) वसुदेवः=आनकदुन्दुभिः श्रीकृष्णस्यजनकरूपेणावतीर्णः (यस्य जन्मनि देवा हर्षातिरेकेण आनकदुन्दुभिनामकं वाद्यविशेषं वादयामासुरिति यतो हि तस्यात्मजः साक्षात्परमात्मा भविष्यतीति पौराणिकाः वदन्ति) (यश्च) वेदार्थः=वेदानामर्थोवेदार्थः वेदरहस्यम्, वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्य इति श्रीमुखगानात् वेदस्य तात्पर्यं ज्ञेयं वस्तु श्रीकृष्ण एवेति अंशांशिनोरभेदात् बलरामस्य च तदंशत्वेन रामकृष्णयोः=बलरामकृष्ण-रूपेणावतीर्ण इति शेषः ।

हिन्दी भावार्थ--लीलापुरुषोत्तम सच्चिदानन्द परमात्मा सर्वेश्वर श्रीकृष्ण अपनी लीलाविभूति में नित्य अन्तरङ्ग बहिरङ्ग समस्त पार्षदों को सहचरी-सहचर रूप से भूतल में अवतारण करते हैं । काम-क्रोधादि विकारों को भी अपने विरोधी रूप से प्रकट कराते हैं । क्योंकि वे भी नित्य हैं, इसी अभिप्राय से इसके अग्रिममन्त्रों में श्रीकृष्ण का सर्वनियन्तृत्व, सर्वान्तिर्यामित्व, सर्वाधारत्व, सर्वेश्वरत्व, सर्वज्ञत्व, निखिलजगदभिन्न-निमितोपादानकारणत्व और ब्रह्मात्मकत्व आदि स्वरूप गुणशक्ति का प्रतिपादन किया गया है । प्रस्तुत मन्त्र में वसुदेव-देवकी को वेदराशि तथा रामकृष्ण को उसका तात्पर्यार्थ कहा गया है । जो ब्रह्मपुत्री गायत्री किंवा सरस्वती ऋग् यजुः साम अथर्व इन चारों वेदों द्वारा समान रूप से गायी जाती है । गायत्री की वर्णावली चारों वेदों में समान है । वह लोक वेद प्रसिद्ध गायत्री वसुदेवपत्नी कृष्णजननी देवकी रूप में अवतीर्ण हुई है । उसी प्रकार जो शब्द ब्रह्मात्मक वेद समूह है वह आनकदुन्दुभि-

वसुदेव के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । इनके जन्म पर देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर आनकदुन्दुकभि (नगाड़े) आदि वाद्य विशेष बजाकर इसलिए उत्सव मनाया कि आगे चलकर साक्षात् नारायण इनके पुत्ररूप से प्रगट होंगे, ऐसी पौराणिक कथा प्रसिद्ध है । समस्त वेदों का जो सारभूत अर्थ है वह बलरामश्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण है । भगवान् स्वयं कहते हैं--वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्यः इत्यादि ॥९॥

मूल -- **स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीर्णो महीतले ।**
वने वृन्दावने क्रीडन् गोपगोपीसुरैः सह ॥१०॥

श्रीकृष्णस्यावतारप्रसङ्गमाह

अन्वयः--यस्तु सततं स्तुवते सः महीतले गोपगोपीसुरैः सह क्रीडन् वृन्दावने वने अवतीर्णः ।

व्याख्या--अत्र चार्थे तु प्रयोगः । यश्च=वेदैकगम्यः पुरुषोत्तमः श्रीकृष्णः वेदैः मुनिभिश्च सततम्=अनवरतम् स्तुवते=स्तूयते, कर्तरि लकारःशविकरणश्च बहुलं छन्दसि इति नियमात्, लोके तु कर्मणि प्रत्ययः साधु, सः=परमात्मा महीतले=भूतले गोपगोपीसुरैः गोपश्च गोप्यश्च गोपगोप्यः परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः इति नियमात् स्त्रीत्वम्। सुराश्च सुराश्चेति द्वन्द्वे एकशेषः गोपगोप्यश्चते सुरा गोपगोपीसुराः तैः गोपगोपीसुरैरिति द्वन्द्वगर्भिततत्पुरुषसमासः । गोपगोपीरूपदेवैः सह सार्द्धम् क्रीडन्=नानाविधबाल्यकौमार पौगण्डकैशोरलीलाभिर्विहरन् विहरिष्यन् वा, वृन्दावने वने=तुलसीकानने दिव्यधाम्नि, अत्रैको वन शब्दः सर्वोत्कृष्टधामसूचकः । तथा चोक्तम् वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति,तुलसी काननं यत्र यत्र पद्म वनानि च । पुराण पठनं यत्र

तत्र सन्निहितो हरिः । इत्यदिशास्त्रवचनात् धामधामिनोरविनाभावश्च गोलोकादेव लीलाविहाराय वृन्दावनमवतारित मिति सिद्धम् । अवतीर्णः= लीलापुरुषोत्तमरूपेण मानवाकृत्याऽवतारं गृहीतवान् इति शेषः ॥१०॥

हिन्दी भावार्थ--जो वेदैकगम्य पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण वेदों मुनियों द्वारा निरन्तर संस्तुत हैं वे परमात्मा भूलोक में गोपगोपीरूपधारी देवगणों के साथ नाना प्रकार से लीलाविहार करेंगे एतदर्थ दिव्यधाम श्रीवृन्दावन में अवतीर्ण हुए हैं । धामधामी का अभेद रूप होने से भौमवृन्दावन भी दिव्यगोलोक से ही अवतारित है ऐसा विद्वानों का अभिमत है ॥१०॥

मूल -- **गोप्यो गावो ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः ।**
वंशस्तु भगवान् रुद्रः शृङ्गमिन्द्रः सगोसुरः ॥११॥

ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिदेवैः श्रीकृष्णस्यान्तरङ्गसाहचर्यं प्राप्तमिति श्रुतिः कथयति ।

अन्वयः--तस्य गोप्यः गावश्च ऋचः (आसन्) यष्टिका कमलासनः भगवान् रुद्रस्तु वंशः सगोसुर इन्द्रः शृङ्गम् (आसीत्) इति ।

व्याख्या--तस्य=श्रीकृष्णस्य लोकोत्तरां भक्तिमाविष्कर्तुं या गोप्यः=व्रजाङ्गना याश्च गावः धेनवः आसन् ताः साक्षात् ऋचः=वेदमन्त्रा वर्तन्ते, वेदे काण्डत्रयं वर्तते । तत्र लक्षात्मका मन्त्राः सन्तीतिवदन्ति मन्त्रविदः ।तेषूपासनाकाण्डस्य ये मन्त्रास्त एव भगवन्तं कान्तभावेनोपासितुं वात्सल्यभावेनोपासितुं च गोपीरूपेण गोरूपेण चावनितले व्रजमण्डले-ऽवतीर्णा इति मन्त्राशयः पूर्वे या ऋषिरूपा गोप्य उक्तास्ताभ्य इमा भिन्नाः । तस्य भगवतो गोपालवेषधारिण एकस्मिन् करतले या यष्टिका= वेत्रं विराजते सा स्वयं कमलासनः कमलं पद्ममासनं वासस्थानं यस्य स पद्मासनः प्रजापतिर्ब्रह्मास्ति । यस्तु अन्यस्मिन् करपद्मे वंशः=वेणुः वंशीति

विराजते सः भगवान् रुद्रः=शिवोऽस्ति लिङ्गकालव्यत्ययश्छान्दसः । यच्च भगवान् कक्षे शृङ्गं बिभर्ति तत् सगोसुरः=गोभिः सुरैश्च सहितः सगोसुरः देवैः सुरभ्या च युक्त इन्द्रो देवराजो वर्तत इति ॥११॥

हिन्दी भावार्थ--भगवान् श्रीकृष्ण की लोकोत्तर भक्ति-धारा प्रवाहित करने के लिए जो गोपीवृन्द और गोयूथ है वे सब उपासनाकाण्ड रूप वेद के मन्त्र हैं । वेद में कर्म, ज्ञान, उपासना के भेद से तीन काण्ड है । उनमें कुल एक लाख मन्त्रों की संख्या बताई गयी है । जिनमें से जो मन्त्र अर्थात् ऋचाएँ उपासना काण्ड की है उन्होंने गोपी और गोरूप धारण कर कान्त भाव एवं वात्सल्य भाव से भगवान् की उपासना की है । पूर्व में जो ऋषि रूपा गोपियाँ कही गयी है उनमें से ये भिन्न हैं क्योंकि गोपियों का मण्डल भिन्न-भिन्न है । कोई देव रूपा, कोई ऋषिरूपा, कोई श्रुतिरूपा इत्यादि, गोपालवेषधारी भगवान् के एक कर कमल में जो वेत है वह साक्षात् कमलासन ब्रह्माजी हैं । दूसरे कर कमल में जो वंशी विराजमान है वह भगवान् रुद्र हैं । जो शृङ्ग नामक वाद्य प्रभु कमर में धारण करते हैं वह देवगण और गोवृन्द सहित देवराज इन्द्र हैं । इन ब्रह्म रुद्र इन्द्र प्रभृति देव श्रेष्ठों को भी कृष्ण का अन्तरङ्ग साहचर्य प्राप्त हुआ है ॥११॥

मूल -- **गोकुलं वनवैकुण्ठं तापसास्तत्र ये द्रुमाः ।**
लोभक्रोधादयो दैत्याः कलिकालस्तिरस्कृतः ॥१२॥

अत्र गोकुलस्य वैकुण्ठत्वं द्रुमाणां तापसत्वं क्रोधलोभादि-विकाराणामसुरत्वं च निर्दिष्टमस्ति ।

अन्वयः--गोकुलं वन वैकुण्ठम्, तत्र ये द्रुमाः (ते) तापसाः, लोभ-क्रोधादयो दैत्याः कलिकालः तिरस्कृतः (सञ्जातः) ।

व्याख्या--गोकुलम्=गोकुलाख्यो ग्रामः वन लुप्त विभक्तिकं पदं वृन्दावनो पलक्षकं, तथाहि गोकुलं वृन्दावनं च साक्षात् वैकुण्ठम्=मुक्तैः प्राप्यं परं धामेतिज्ञेयम् । तत्र=गोकुल ग्रामे वृन्दावने च ये द्रुमाः=तरवो वीरूधश्च ते=सर्वे पादपाः, तापसाः=तपस्विनः, तपोधना मुनयो लीला विहारिणः श्रीकृष्णस्य निरवधिर्लीलारसपानाय साधारणतरु-गुल्म लतौषधीनां स्वरूपं धृत्वा व्रजे वृन्दावने वा निवसन्तीति । एवञ्च कृष्णसख उद्धवोऽपिस्वयमभिलषति यत् **आसामहोचरणरेणुजुषामहंस्यां वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनाम् । या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्** । जगत्स्रष्टा ब्रह्मापि वृन्दावनस्य तरुलतासु जन्म वाञ्छतिकिमन्येषाम् । लोभ क्रोधादयः=लोभश्च क्रोधश्च लोभक्रोधौ तौ आदी येषां ते लोभक्रोधादयः लोभ-क्रोध-काम-मद-मोह मात्सर्याख्यषड्विकाराः दैत्याः=शकट-तृणावर्त -वत्स-वक-प्रलम्बाघासुरादयो विरोधिरूपेणावतीर्णाः । कलिकालः=मूर्तिमान् कलहरूपः, तिरस्कृतः=दैत्येषु तिरस्कारभावेना विर्भूतः, तेषां देवतिरस्कार स्वभावात् ॥१२॥

हिन्दी भावार्थ--गोकुल ग्राम और वृन्दावनधाम साक्षात् वैकुण्ठ लोक मुक्त जीवों को प्राप्त होने वाला परमधाम है । ऐसा समझना चाहिए । उस गोकुल और वृन्दावन में जो वृक्षलतादि हैं वे सब तपस्वी मुनिजन हैं । क्योंकि वे तपोधन महात्मा लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का चिरकाल तक रसपान करने हेतु साधारण वृक्ष-लता-गुल्मादि का रूप धारण कर व्रज किंवा वृन्दावन में निवास करते हैं । कृष्ण के प्रिय सखा उद्धवजी भी ऐसी अभिलाषा करते हैं-हे प्रभो ! जिन व्रज गोपियों ने अत्यन्त दुस्त्यज स्वबन्धुओं का मोह और कुल मर्यादा का त्यागकर श्रुतियों द्वारा खोजे जाने योग्य आपके चरण कमलों का

आश्रय लिया ऐसी लोक पावन व्रजाङ्गनाओं की चरण धूलि को अपने ऊपर धारण करने वाली इन लता गुल्म औषधियों के मध्य कोई सा रूप मैं भी प्राप्त कर सकूँ ऐसी मुझ पर कृपा करना । जगत्स्रष्टा ब्रह्मा भी वृन्दावन की तरुलताओं में जन्म चाहते हैं दूसरों की क्या बात, काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य इन विकारों ने शकट-तृणावर्तवत्स बकासुर आदि दैत्यों का रूप धारण किया । मूर्तिमान् कलह ने दैत्यों में तिरस्कार का भाव लिया ॥१२॥

गोपरूपो हरिः साक्षात् मायाविग्रहधारणः ।
दुर्बोधं कुहकं तस्य मायया मोहितं जगत् ॥१३॥

अस्मिन् मन्त्रे भगवतो गोपाल रूपत्वं तन्मायायाश्च दुर्ज्ञेयत्वं प्रतिपादितमस्ति ।

अन्वयः--मायाविग्रहधारणः साक्षात् हरिः गोपरूपः (अजायत) तस्य कुहकं दुर्बोधम्, (तस्य) मायया जगत् मोहितम् (अस्ति) ।

व्याख्या--मायाविग्रहधारणः=मायया लीलया विग्रहं वपुः धारयति दधातीति मायाविग्रहधारणः लीलावपुर्धरः (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः) इति सूत्रेणण्यन्तधृधातोर्ल्युप्रत्ययः) साक्षात्=गोलोक-विहारी, हरिः=भगवान् सर्वेश्वरः श्रीकृष्णः गोपरूपः=गोपालवेषो नन्द-नन्दनः अजायत, तस्य=लीलापुरुषोत्तमस्य, कुहकम्= लीलाविहारादिकं मायास्वरूपम्, दुर्बोधम्=दुःखे न बोद्धुं शक्यम् अर्थात् दुर्ज्ञेयमस्ति । यतः (तस्य) मायया=कुहकेन, जगत्=चराचरात्मकं निखिलं प्रपञ्चम्, मोहितम्=आश्चर्यान्वितं विहितम् । तथा चोक्तं भागवते विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्, गीतायां च दैवी ह्येषा गुणमयी माया दुरत्यया, इत्यादि अनादिमाया परियुक्तरूपम् इति वेदान्तकामधेनु

दशश्लोक्यामाद्याचार्यसुदर्शनचक्रावतारेण भगवता श्रीमन्निम्बार्का-चार्येणापि तथैव निर्दिष्टम् ॥१३॥

हिन्दी भावार्थ--लीला पूर्वक विग्रह धारण करने वाले गोलोक-विहारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी लीला विभूति में गोपवेष धारी नन्दनन्दन के रूप से अवतीर्ण हुए हैं । उन लीला पुरुषोत्तम की ऐश्वर्यगर्भित माधुर्य लीला के निमित्त स्वीकृत मायास्वरूप को जानना बड़े-बड़े योगियों के लिए भी कठिन है, क्योंकि उनकी माया ने चराचरात्मक जगत्को ही मुग्ध कर रखा है । भागवतकार कहते हैं--भगवान् विष्णु की अघटन घटना पटीयसी महामाया महिमामयी है जिसने सारे विश्व को मोहित कर रखा है । गीता में स्वयं प्रभु कहते हैं-मेरी गुणमयी यह दैवी माया है अर्थात् जीती नहीं जा सकती । श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य ने भी वेदान्तदशश्लोकी में अनादिमाया से परिवेष्टित है स्वरूप जिसका, ऐसा कहा है ॥१३॥

दुर्जेया सा सुरैः सर्वैर्धृष्टि-रूपोऽभवद् द्विजः ।
रुद्रो येन कृतो वंशस्तस्य माया जगत् कथम् ॥१४॥

अत्र मायाया दुर्जेयत्वं निर्दिष्टम्--

अन्वयः--सा सर्वैः सुरैः दुर्जेया द्विजः धृष्टिरूपः अभवत्, येन रुद्रः वंशः कृतः तस्य माया जगत् कथम् (जानीयात्) ।

व्याख्या--सा=वैष्णवी माया, सर्वैः=निखिलैर्ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिभिः, सुरैः=देवैरपि, दुर्जेयाः जेतुमशक्या भवति यया द्विजः=पक्षिराड् गरुडः स्वाभिमानवशात्, धृष्टिरूपः विपिनवराहरूपः, अभवत्=अजायत, येन=भगवता नारायणेन स्वमाया प्रभावात्, रुद्रः=शिवोपि वंश=वेणुरूपः, कृतः=विहितः (वंशस्तु-भगवान् रुद्रः) इति पूर्वोक्तत्वात् । (अतः) तस्यः=परमात्मनः, माया=कुहकम् लीलाविहारादिकम् (माया इत्यत्र द्वितीयार्थे प्रथमाकृता मायाम्) जगत्=सांसारिक जीवसमूहः केन प्रकारेण

जानीयात् इति युज्यते ।

हिन्दी भावार्थ--वह वैष्णवी माया ब्रह्मरुद्रेन्द्रादि देवों द्वारा भी जीती नहीं जा सकती । जिस माया ने किञ्चित् मात्र गर्व करने पर पक्षिराज गरुडजी को भी विपिन वराह बना दिया और साक्षात् रुद्रदेव को वेणुस्वरूप बनाया। वत्सहरण प्रसङ्ग में ब्रह्मा तथा गोवर्धन धारण में इन्द्र व्यामोह में पड़ गये । अतः इन सर्वेश्वर की योग (माया) को साधारण जीव समुदाय कैसे जान पायेगा ? अर्थात् किसी प्रकार नहीं ।।१४।।

मूल -- **बलं ज्ञानं सुराणां वै तेषां ज्ञानं हृतं क्षणात् ।**

शेषनागो भवेद् रामः कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम् ।।१५।।

अस्मिन् मन्त्रे देवानां बलापहरणं कृष्णबलदेवयोरवतरणं च निरूपितम् ।

अन्वयः--सुराणां बलं ज्ञानं (वर्तते) वै तेषां ज्ञानं क्षणाद् हृतम्। शेषनागः रामः भवेत्, कृष्णः शाश्वतं ब्रह्म एव (भवेत्) ।

व्याख्या--सुराणाम्=वाय्वग्निवरुणेन्द्रादीनां देवानाम्, यद्बलम्=सामर्थ्यमस्ति (तद्) ज्ञानम्=परोक्षाऽपरोक्ष सार्वकालिकी अप्रतिहता दिव्यदृष्टिस्तद्रूपोबोधः (वर्तते) वै=निश्चयेन, तेषाम्=दिव्यदृष्टिसम्पन्नानामपि देवानाम्, ज्ञानम्:बोधरूपं सामर्थ्यम्, क्षणात्=क्षणमात्रेण, हृतम्=अपहृतम् , एकदा सर्वेदेवा दैत्यान् पराजित्य गर्विता बभूवुः, यद् दैत्यानहमजयम्-इति । कृपालुर्भगवान् तेषां बलापहरणाय मायया यक्षरूपेणाऽविरासीत् । तेषां ज्ञानरूपं सामर्थ्यं तदैव विलुप्तम् । इन्द्राज्ञया यक्षं प्रष्टुंवह्निर्जगाम, तदग्रे तृणं निधायोक्तं यक्षेणेदं दह-इति, सर्वशक्त्याऽप्यग्निर्दग्धुं तन्नाशकत्, न च तं ज्ञातवान् कोऽसौ यक्ष इति । एवमेव वायुरिन्द्रश्च तं न जज्ञतुः । इत्थं तेषां ज्ञानरूपं बल-मपहृतम् ।

शेषनागः=शेषश्चचासौ नागः शेषनागः, अनन्त एव रामः= रामरूपेण बलदेव रूपेणावतीर्णः, शाश्वतम्=अनाद्यनन्तरूपं ब्रह्म=परं ब्रह्म, एव कृष्णः=सच्चिदानन्दो वृन्दावनविहारी संजातः ।।१५।।

हिन्दी भावार्थ--इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि देवों का जो बल अर्थात् सामर्थ्य है वह (ज्ञान) परोक्ष-अपरोक्ष-सार्वकालिक अप्रतिहत दिव्यदृष्टि रूप बोध ही है । किन्तु उनका वह ज्ञानरूपी बल सर्वनियन्ता सर्वेश्वर श्रीकृष्ण क्षण में ही अपहृत कर लेते हैं । एक बार युद्ध में दैत्यों को परास्त कर देवगण स्वर्गीय आनन्द भोग रहे थे । उसी समय उनके मन में अहंकार जगा कि युद्ध में दैत्यों को हमने परास्त किया है । वास्तविकता यह थी कि भगवान् की सहायता से इन्द्रादि देवों ने विजय पायी थी । परम दयालु परमात्मा देवगणों के मानसिक विकार दूर करने के लिए यक्ष रूप धारण कर उनके सन्निधि में प्रकट हो गये । इन्द्र ने सर्व प्रथम अग्निदेव को भेजा जाओ यह यक्ष कौन है ज्ञात करके आओ । अग्निदेव बड़े गर्व से गये, यक्ष ने पूछा तुम कौन हो तुम्हारा क्या सामर्थ्य है । अग्निदेव बोले-मैं अग्नि हूँ, चाहूँ तो मैं पूरे जगत् को भस्म कर सकता हूँ, उसके सामने एक शुष्क तृण रखकर कहा इसे जलाओ तो देखें, पूरी शक्ति लगाने पर भी तृण नहीं जला सके, लज्जित होकर वहाँ से अग्निदेव इन्द्र के पास पहुँचे, कहा यक्ष कौन है मैं नहीं जान सका । तदनन्तर वायु तथा स्वयं इन्द्र भी गये किन्तु यक्ष को पहचान न सके । तात्पर्य यह है कि देवताओं का ज्ञानरूपी बल प्रभु ने तत्क्षण हरण कर लिया । भगवान् शेषनाग (अनन्त) ही श्रीबलराम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं और आद्यन्त रहित परब्रह्म परमात्मा ही श्रीकृष्णरूप से अवतीर्ण हुए हैं ।।१५।।

मूल -- **अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा ।**

ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः स्त्रियः ।।१६।।

अस्मिन् मन्त्रे श्रीकृष्णपत्नीनां श्रुतिरूपत्वं प्रतिपाद्यते ।

अन्वयः--तथा (याः) अष्टौ शताधिक्यः अष्टसहस्रे द्वे स्त्रियः ताः उपनिषदः ऋचः वै (सर्वाः) स्त्रियः ब्रह्मरूपाः ऋचः सन्ति ।

व्याख्या--या रुक्मिण्याद्याः, अष्टौ=अष्टसंख्यका महिष्यः, तथा शताधिक्यः=शतमधिकं यासां ताः शतोत्तराः, द्वे=द्वि गुणिते, अष्टसहस्रे=द्वयष्टसहस्रे षोडशसहस्रसंख्यका अर्थात् अष्टोतर शताधिक-षोडशसहस्रसंख्यकाः स्त्रियः=श्रीकृष्णस्य पत्न्य आसन् (याः) शास्त्रेषु-निर्दिष्टाः कृष्णपत्न्यः, ताः=सर्वाः उपनिषदः=वेदशिरोभागस्य, ऋचः=मन्त्राः प्रसिद्धाः (सन्धिरार्ष) अतएव वै=निश्चयेन ऋचः स्त्रियः मन्त्ररूपाः कृष्णपत्न्यः ब्रह्मरूपाः=ब्रह्मणः श्रीकृष्णादभिन्नाः शक्तिरूप-त्वात् । यतः शक्तिशक्तिमतोरभेददर्शनात् ।

वेदेषु काण्डत्रयं वर्तते कर्मोपासनाज्ञानभेदात् । तत्र ये मन्त्राः उपासनाकाण्डे निर्दिष्टास्ते सर्वे सहचरीभावेन श्रीकृष्णं सेवितुं स्त्रीरूपं विधाय तत्पत्नीत्वं प्राप्ता इति तात्पयार्थः । यथा शब्दार्थ-योरभेदसम्बन्धस्तथैव राधाकृष्णयोः रमामाधवयोः सीतारामयोः, उमामहेश्वरयोश्चाऽविनाभावसम्बन्ध इत्यौपनिषदानां सिद्धान्तः ।

हिन्दी भावार्थ--जो रुक्मिणी प्रभृति सोलह हजार एक सौ आठ संख्यात्मक श्रीकृष्ण पत्नी हैं वे सब उपनिषद् के मन्त्र हैं तथा श्रीकृष्ण की अनन्य शक्तियाँ है । **देवत्वे देवरूपा सा मानुषत्वे च मानुषी** इत्यादि वचनानुसार लीलाविभूति में सहचरीभाव से श्रीकृष्ण की सेवा के लिए उन मन्त्ररूपा शक्तियों ने स्त्रीरूप धारण कर कृष्णपत्नीत्व स्वीकार किया है । जिस प्रकार शब्द और अर्थ का अभेद सम्बन्ध है उसी प्रकार राधा- कृष्ण, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, उमामहेश्वर आदि का अभेद सम्बन्ध है ॥१६॥

मूल -- **द्वेषश्चाणूर मल्लोऽयं मत्सरो मुष्टिको जयः ।**
दर्पः कुवलयापीडो गर्वो रक्षः खगो बकः ॥१७॥

अस्मिन् मन्त्रे कंसानुयायिनां चाणूरादीनां द्वैष्यादिविकारावतार इति निर्दिश्यते--

अन्वयः--अयं चाणूरमल्लः (सः) द्वेषः (आसीत्) (यश्च) जयो मुष्टिक (सः) मत्सरः कुवलयापीडः दर्पः रक्षः खगोबकः गर्वः (बभूव) ।

व्याख्या--अयम्=कंसानुचरः, चाणूरमल्लः=चाणूरश्चासौमल्लः चाणूरनामा मल्लयोद्धा, द्वेषः=अमर्षात्मक क्रोधरूपोविकार आसीत्, यश्च जयः=विजयशीलो, मुष्टिकः=मुष्टिकनाम्नाप्रसिद्धो योद्धा, मत्सरः=परोत्कर्षासहिष्णुरूप विकार आसीत् । कुवलयापीडः=दश-सहस्रगजाधिकबलशाली कुवलयापीडाख्यो गजः, दर्पः=अहंकार-रूपविकार आसीत्, (यः) गर्वः= अभिमानाख्योविकार खगोबकः= पक्षिरूपोबकासुरनामा, रक्षः=राक्षसो बभूवेति ॥१७॥

हिन्दी भावार्थ--यह जो कंस का अनुचर चाणूर नामक योद्धा (पहलवान) है वह द्वेष अर्थात् क्रोध रूप विकार का अवतार था और जो जयशील मुष्टिक नामक मल्ल (पहलवान) है वह मत्सर अर्थात् दूसरों के उत्कर्ष को न सह सकने वाला विकार था । इसी प्रकार दश हजार हाथियों के समान बल वाला कुवलयापीड हाथी जिसे कंस के पराक्रम से प्रसन्न होकर जरासन्ध ने अपनी कन्याओं के साथ उपहार (दहेज) में उसे दिया था वह अहंकार रूप विकार था, और जो अभिमान रूप विकार है वह पक्षी रूप बकासुर नामक राक्षस हुआ । इस प्रकार प्रस्तुत मन्त्र में कंस के अनुयायियों को द्वेषादि विकार का अवतार बताया गया है ॥१७॥

मूल -- **दया सा रोहिणी माता सत्यभामा धरेति वै ।**
अघासुरो महाव्याधिः कलिः कंसः स भूपतिः ॥१८॥

दयादीनां स्वरूपमाह--

अन्वयः--सा दया माता रोहिणी (या च) वै धरा (सा) सत्यभामा इति, महाव्याधिः अघासुरः कलिः स भूपतिः कंसः (अजायत) ।

व्याख्या--सा=लोके वेदे च प्रसिद्धा, दया=करुणाभावः, (साक्षात्) माता=बलदेवजननी रोहिणी=वसुदेवपत्नीरूपेणावतीर्णा, या च धरा=सकललोकानामाश्रयभूता धरणी, आधारशक्तिरूपा, (सा) वै= निश्चयेन सत्यभामा=श्रीकृष्णस्य पत्नीरूपेण अजायत । (यः) महाव्याधिः=निखिलप्राणिमात्रस्य दुःखहेतुरूपो रोगः (सः) अघासुरः= महाव्यालरूपोऽसुरः समुत्पन्नः, कलिः=कलहरूपः कलिकालः सः=प्रसिद्धः भूपतिः=राजा, कंसः=उग्रसेन यादवस्य पुत्ररूपेण समुत्पन्न इति ॥१८॥

हिन्दी भावार्थ--दयादि का स्वरूप बताते हैं-वह लोक वेद में प्रसिद्ध दयारूप (करुणाभाव) गुण बलदेव जननी वसुदेव पत्नी रोहिणी के रूप में प्रकट हुआ, जो समस्त लोकों का आश्रय रूप पृथ्वी है वह सत्यभामा श्रीकृष्ण की अनपायिनी शक्ति पत्नी रूप में प्रकट हुई हैं । जो निखल प्राणीमात्र का दुःख हेतु महाव्याधि है यह महाव्याल (अजगर) रूप असुर हुआ और जो कलहरूप साक्षात् कलियुग है उसने उग्रसेन के पुत्र के रूप में यदुकूल में अवतार लिया ॥१८॥

मूल -- **शमो मित्रः सुदामा च सत्याक्रूरोद्धवो दमः ।**
यः शङ्खः स स्वयं विष्णुर्लक्ष्मी-रूपो व्यवस्थितः ॥१९॥

दुग्धसिन्धौ समुत्पन्नो मेघघोषस्तु सम्भृतः ।
दुग्धोदधिः कृतस्तेन भग्नभाण्डो दधिगृहे ॥२०॥

अत्र शमादीनां दिव्यगुणानामवतारमाहः--

अन्वयः--शमः मित्रः सुदामा (जातः) सत्यं च अक्रूरः, दमः उद्धवः (समभवत्) यः मेघघोषः सम्मृतः दुग्धसिन्धौ समुत्पन्नः शंखः सः स्वयं विष्णु (तथाच) लक्ष्मीरूपः व्यवस्थितः । तेन दधिगृहे भग्नभाण्डः, दुग्धोदधिः कृतः ।

व्याख्या--शमः=शान्तिरूपो दिव्यगुणः, मित्रः=सुहृद् श्रीकृष्णस्य बालसखः, सुदामा=सुदामानाम्ना प्रसिद्धो विप्रः (संजातः) सत्यं च=सद्व्यवहाररूपसद्गुणः, अक्रूरः=स्वफल्कतनयोयादवः, (अभूत्) दमः=इन्द्रियदमनरूपोगुणः, उद्धवः=औपगविः अजायत । अत्र सत्यम् इत्यत्रमकार लोपः अक्रूरोद्धव इत्यत्र गुणसन्धिश्चार्षः । यो मेघ-घोषः=मेघस्य घोष इव घोषो यस्य सः, मेघवत् गम्भीरस्वनः, सम्भृतः=परिपूर्णाङ्गः, दुग्धसिन्धौ=क्षीरसागरे, समुत्पन्नः=अमृतमथने चतुर्दशरत्नेष्वेकतमरत्नरूपेणाविर्भूतः, शंखः=पाञ्चजन्यनाम्नाप्रसिद्धः श्रीकृष्णस्य शंखः, स्वयम्=साक्षात् विष्णुः=विष्णुरूपः, लक्ष्मीरूपः= सकलैश्वर्यदानसमर्थः, व्यवस्थितः=विशेषेण प्रतिष्ठितो वर्तते इति ।

क्षीरसागरविहारिणा तेन=बालरूपेण भगवता श्रीकृष्णेन, दधि-गृहे=नन्दभवनस्य दधिमन्थनस्थले, यशोदाया दधिमन्थनकाले रोषाद्, भग्नभाण्डः=भग्नो भाण्डो यस्मिन् सः=त्रोटितपात्रः, अतएव दुग्धोदधिः= क्षीरसमुद्र इव कृतः=अकारीति शेषः ॥१९-२०॥

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में शम-दमादि दिव्य गुणों का आविर्भाव बताते हैं--शम-शान्ति रूप सद्गुण ने श्रीकृष्ण के मित्र सुदामा

ब्राह्मण का रूप लिया, सत्य भाषणादि सद् व्यवहार ने अक्रूर का और इन्द्रिय दमनरूप दम ने उद्धव का स्वरूप धारण किया । मेघ के समान गम्भीर घोष वाला भगवान् का पाञ्चजन्य शङ्ख जो सर्वाङ्ग पूर्ण क्षीर सागर से प्रकट हुआ वह साक्षात् विष्णुरूप और सकल ऐश्वर्यदाता लक्ष्मी स्वरूप है ऐसी शास्त्रों में प्रसिद्धि है । क्षीर सागर विहारी भगवान् बालकृष्ण ने नन्दनन्दन के दधिगृह में माता यशोदा द्वारा दधिमन्थन के समय रोष से दधिपात्र फोड दिये और बिलोया हुआ दही फैल जाने से वह स्थल क्षीर सागर जैसा बना ॥१९-२०॥

मूल -- **क्रीडते बालको भूत्वा पूर्ववत् सुमहोदधौ ।**
संहारार्थं च शत्रूणां रक्षणाय च संस्थितः ॥२१॥

क्षीरसमुद्रशायी परमात्मा दधिगृहे बालको भूत्वा क्रीडति--इत्याह--

अन्वयः--शत्रूणाम् संहारार्थम् (सुर-गो-विप्र-साधूनाम् रक्षणाय च बालको भूत्वा (स परमात्मा) सुमहोदधौ पूर्ववत् क्रीडते ।

व्याख्या--शत्रूणाम्=सत्कर्मविरोधिनां रिपूणाम्, संहारार्थम्=विनाशाय, सुर-गो-विप्र साधूनां धर्मस्य च रक्षणाय=परिपालनाय च स परमात्मा बालको भूत्वा= नन्दयशोदयोः पुत्ररूपेणावतीर्य, सुमहोदधौ=क्षीरस्य महासागरे पूर्ववत्=नित्यविभूतौ यथाक्रीडति तथैव लीलाविभूतावपि दधिगृहं क्षीरसागरं विधाय क्रीडते=विहरति । क्रीड धातोरनुदातेत्त्वमार्षम् ।

स्वावतार प्रयोजनं भगवान् स्वयमाह **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ परि-त्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय**

सम्भवामि युगे युगे । भगवन्निम्बार्काचार्यचरणैरपि वेदान्तकामधेनावुक्तम्-भक्तेच्छयोपात्त सुचिन्त्यविग्रहात् इति ॥२१॥

हिन्दी भावार्थ--सत्कार्य के विरोधी शत्रुओं के विनाश के लिए एवं गो-विप्र-सुर साधुओं की और धर्म की रक्षा के लिए परमात्मा नन्द-यशोदा के पुत्ररूप में बालक बनकर जिस प्रकार पूर्व में क्षीर महा-सागर में क्रीडा करते हैं उसी प्रकार लीला विभूति में भी नन्द भवन में दधिगृह को ही क्षीर सागर बनाकर विहार करते हैं--भगवान् स्वयं अपने अवतार का उद्देश्य बताते हैं-- जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है तब मैं स्वयं अपने आपको लोक में प्रकट करता हूँ । सज्जनों की रक्षा, धर्म की संस्थापना एवं दुष्टों के विनाश के लिए प्रत्येक युग में अवतार ग्रहण करता हूँ । सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य जी ने भी स्वरचित वेदान्त दशश्लोकी में कहा है--युग युगान्तरों के भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के लिए तदनुसार रूप धारण करते हैं ॥२१॥

मूल -- **कृपार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।**
यत्स्रष्टुमीश्वरेणासीत् तच्चक्रं ब्रह्मरूपधृक् ॥२२॥
जयन्ती सम्भवः------------------।

अत्र चक्रराजसुदर्शनस्याचार्यरूपेणावतारमाह--

अन्वयः--सर्वभूतानाम् कृपार्थे आत्मजं धर्मगोप्तारम् ईश्वरेण यत् स्रष्टुम् (अभीष्टं) आसीत् तत् चक्रं ब्रह्मरूपधृक् जयन्ती सम्भवः (बभूव) इति उत्तरेण वाक्येन सम्बन्धः ।

व्याख्या--सर्वभूतानाम्=सर्वाणि च तानि भूतानि सर्वभूतानि तेषां समस्त प्राणिनाम् कृपार्थे=अनुग्रहाय, आत्मजम्=आत्मनः स्वस्मात् जात आत्मजः तमात्मजं निजस्वरूपम्, धर्मम्=सुकृतम्-श्रुतिस्मृतयुक्त-

सदाचाररूपम्, गोप्तारम्=रक्षकम्, यत्=यम् (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः) ईश्वरेण=कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थेन परमात्मना, स्रष्टुम्=समुद्भावयितुमभीष्टमासीत् तत् स्वयम्=साक्षात् चक्रम्=स्वदयितायुधं सुदर्शनचक्रम् **सुदर्शन महाबाहो ! सूर्यकोटिसमप्रभ । अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोमार्गं प्रदर्शय** इत्यादि भगवदाज्ञया, ब्रह्मरूपधृक्=विप्रवेषधारी-अरुणात्मजः, जयन्ती सम्भवः=जयन्तीकुमाररूपेणावतीर्णो बभूव ।उक्तं च भविष्यपुराणे-सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्ञप्तो जनिष्यति । निम्बादित्य इतिख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यति, इति ॥२२॥

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में चक्रराज सुदर्शन का आचार्यरूप में अवतीर्ण होना कहा गया है । समस्त प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए अपने से समुत्पन्न श्रुतिस्मृत्यादि शास्त्रोक्त सदाचार रूप धर्म के रक्षक रूप में जिसे श्रीहरि प्रकट करना चाहते हैं वे साक्षात् सुदर्शन हैं । हे महाबाहो सुदर्शन ! आपका तेज करोड़ों सूर्य के समान है अतः भूतल पर आचार्यरूप में अवतीर्ण होकर अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे बने हुए प्राणिमात्र को अर्चिरादि पद्धतिरूप विष्णुमार्ग का दर्शन कराकर मेरे परम दिव्यधाम में पहुँचाने का श्रेय प्राप्त करो । भगवान् की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर चक्रराज सुदर्शन विप्र वंशावतंस महर्षि अरुण के पुत्र रूप में माता जयन्ती के गर्भ से प्रकट हुए ।

इनका आविर्भाव दक्षिण भारत के गोदावरी तटवर्ती वैदूर्यपत्तन (मूंगी--पैठण) नगर में हुआ था । तब आपका नाम नियमानन्द रखा गया था ।

तदनन्तर उत्तर भारत व्रजक्षेत्र में पहुँच कर गिरिराज गोवर्धन की तलहटी में आपने तपश्चर्या की । इसी अवसर पर यतिवेश में ब्रह्माजी आये, सूर्यास्त पश्चात् भी निम्बवृक्ष पर उन्हें सूर्यबिम्ब का दर्शन कराया,

इससे आपका नाम निम्बार्क--निम्बादित्य आदि पड़ा । आपके इसी नाम से सम्प्रदाय परम्परा विख्यात हुई, उपासना युगल रूप राधाकृष्ण की माधुर्यमयी और सिद्धान्त स्वाभाविक द्वैताद्वैत या भेदाभेद के नाम से प्रसिद्ध हैं । आपके सम्बन्ध में भविष्य पुराण का वचन उल्लेखनीय है--जैसे, द्वापर युग के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से चक्रराज सुदर्शन भूतल पर प्रकट होंगे तथा निम्बादित्य (निम्बार्क) आदि नाम से विख्यात होंगे । अपने अप्रतिहत प्रभाव से धर्म में आई विकृतियों का हरण कर उसे समुज्ज्वल स्वरूप प्रदान करेंगे । सरल भक्ति मार्ग दिखाकर अनन्त जीवों का कल्याण करेंगे ॥२२॥

अत्रविशेषः ग्रन्थान्तरेषु भगवन्निम्बार्काचार्यस्याष्टरूपेण स्वाराध्यस्य श्रीराधाकृष्णयुगलस्य सेवाराधनप्रकारः सततसाहचर्यं च उपलभ्यते । तद्यथा-श्रीराधाया अङ्गकान्तिरूपेण सर्वातिशयतेजसा तामावृणोति, लीलाविहारादौ सर्वान् स्थावरजङ्गमानभिव्याप्य राधायास्तेजोराशिःशुक-पिक-भृङ्गादीनां हरितकृष्णवर्णानावृत्य काञ्चनवद् विदधाति । **तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम्** इत्यादि शास्त्रवचनात् सुदर्शनस्य तेजोमयत्वं सुप्रसिद्धम् । राधा-इत्यस्य रं अग्निबीजं तेजोरूपं आ समन्तात् दधातीति व्युत्पत्या राधा स्वयं तेजोमयी तस्या गौरतेजोमयत्वं श्रीकृष्णस्य च श्यामतेजोमयत्वं च शास्त्रसिद्धम् । अतएव उभयोरैक्यं सत् तेजोभेदादाकृतिभेदाच्च भिन्नत्वं सर्वानुभवसिद्धम् । तत्र गौरतेजो विना श्यामतेजसः श्यामतेजो विना गौरतेजस उपासने दोषत्वमुक्तम् । तथाह भगवान् शिवः पार्वतीं प्रति--एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम् तस्मादिदं महादेवि गोपालेनैव भाषितम् । संसारसारसर्वस्वं श्यामलं महदुज्ज्वलम् । एतज्ज्योतिरहं वन्द्यं चिन्तयामि सनातनम् । गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् । जपेद्वा ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे ! इति ।

एवं नित्यनिकुञ्जे सखीषु रङ्गदेवीति प्रसिद्धा, गोचारणादिलीलायां सखिषु गोपश्रेष्ठः स्तोकः श्रीनिम्बार्काचार्यस्य तृतीयः स्वरूपः। वासुदेवादि चतुर्व्यूहमध्ये अनिरूद्धस्वरूप आचार्य एव। आयुधेषु चकराजः सुदर्शनः, हस्तकमले शोभमाना यष्टिश्च तदन्यतमस्वरूपो नित्यसाहचर्येण हरिं सेवते। गोषु धूसराख्या धेनुः श्रीनिम्बार्काचार्यस्य सप्तमः स्वरूपः कथ्यते। अष्टमश्च स्वयमाचार्येषु प्रसिद्धः श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यः, सम्प्रदायप्रवर्तकेषु प्राचीनतमः सम्बभूव। इत्येवमष्टधा भगवन्तं श्रीसर्वेश्वरं श्रीकृष्णमाराधयन् लोके स्वाभाविक द्वैतांद्वैतसिद्धान्तं श्रीराधाकृष्णयोर्माधुर्यमयीमुपासनां च प्रवर्तयामास। तदेतच्छ्लोक संग्रहेण निर्दिश्यते, तद् यथा--

राधायामङ्गकान्तिर्विलसति सततं रङ्गदेवी सखीषु
स्तोको गोपाग्रणीर्यः सखिषु गुणनिधिर्व्यूहमध्येऽनिरुद्धः।
भाति श्रीचक्रराजोऽसुरवनदहनश्चायुधेषुप्रसिद्धः
हस्ताब्जे यष्टिरूपो नियमयति जगत्, शोभमानो मुरारेः॥
दोग्ध्री धेनुः सवत्सा गुणगणनिलया धूसराख्या च गोषु,
निम्बार्को निम्बवृक्षार्पिततरणितया देशिकेषु प्रसिद्धः।
इत्येवं चाष्टधा यो भुवि विमलमतिः सेवमानो मुकुन्दं
द्वैताऽद्वैतात्मविद्या-प्रवचनकुशलः सोऽवतात्सर्वदा नः॥

हिन्दी भावार्थः--यहाँ पर श्रीनिम्बार्क भगवान् के सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रसङ्ग दर्शाते हैं-ग्रन्थान्तरों में भगवन्निम्बार्काचार्य का आठ रूप से श्रीराधाकृष्ण के सेवाराधना प्रकार एवं नित्यसाहचर्य का भाव उपलब्ध होता है। जैसे-श्रीराधा की अङ्ग कान्ति के रूप में अपने सर्वातिशय तेज से उन्हें आवृत कर विराजमान है। लीलाविहारादि में सभी

स्थावर जङ्गम को अभिव्याप्त कर श्रीराधाजी का तेजोराशि शुक-पिक-भृङ्गादि जन्तुओं के हरित-कृष्णादिवर्णों को आवृत कर उन्हें काञ्चनवत् बनाती है। सुदर्शन तेजोमय है यह तो प्रसिद्ध है ही, राधा-इस शब्द में जो रकार है वह अग्निबीज होने से तेजोरूप है, उस तेजस्तत्त्व को चारों ओर से धारण करने के कारण राधा तेजोमयी हैं। उनका गौर तेज और श्रीकृष्ण का श्यामतेज होना शास्त्रसिद्ध है। अतएव राधाकृष्ण दोनों एक होते हुए भी तेजो भेद और आकृति भेद से भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि गौरतेज बिना श्याम तेज और श्याम तेज बिना गौर तेज की उपासना करने में दोष बताया है। जैसाकि भगवान् शिव पार्वती को कहते हैं हे देवि! एक ही ज्योति दो रूप में विभक्त होकर राधामाधव के रूप में प्रकट हुई है। इस बात को स्वयं गोपालजी ने मुझे बताया है। ये दोनों श्रीराधामाधव स्वरूप संसार के सारसर्वस्व हैं, श्यामल और उज्वल रूप में विभक्त होने पर भी एक ही है यही इनकी विलक्षणता है। इसी सर्ववन्दनीय उभयात्मक ज्योतिः स्वरूप का मैं निरन्तर चिन्तन करता हूँ। हे पार्वति! जो साधक गौरतेजोमयी श्रीराधा के बिना श्यामतेजोमय श्रीकृष्ण का अर्चन, वन्दन, ध्यान करता है वह दोष का भागी बनता है। अतः श्रीराधकृष्ण युगलरूप ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए यही आचार्यों का सिद्धान्त है। यही अंगकान्ति स्वरूप में आद्याचार्य का स्वाराध्य के साथ नित्य साहचर्य है। इसी प्रकार दूसरा स्वरूप नित्यनिकुञ्ज में सहचरी स्वरूप श्रीरङ्गदेवीजी प्रसिद्ध हैं।

गोचारणलीला में सखाओं के बीच स्तोक नामक सखा गोपाग्रगामी रहते हैं। वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध इन चार व्यूह स्वरूपों में भगवान् अनिरुद्ध श्रीनिम्बार्काचार्य के चतुर्थ स्वरूप हैं। समस्त आयुधों में असुर संघ विनाशक चक्रराज सुदर्शन विख्यात हैं। चराचरात्मक जगत्

के नियामकरूप में प्रभु के हस्तकमल में यष्टिरूप से विराजमान हैं । गौओं में अनन्तगुणभूषित धूसरा नामक धेनु आद्याचार्य का स्वरूप बताया गया है । यह आपका सातवां स्वरूप हैं । आठवें रूप में निम्बवृक्ष पर अर्क बिम्ब स्थापित करने से **निम्बार्क**, इस अन्वर्थ नाम से समस्त वैष्णवाचार्यों में प्रचीनतम आचार्य प्रसिद्ध हैं । आपश्री ने द्वैताऽद्वैतदार्शनिक सिद्धान्त और श्रीराधाकृष्ण की रसमयी उपासना का लोक में प्रवर्तन कर जगत् का कल्याण किया । वे आचार्य प्रभु हम सब की रक्षा करें, इस प्रकार पूर्वोक्त प्रसङ्ग को श्लोकबद्ध करके प्रस्तुत किया गया ।

मूल -- ----------**वायुश्चामरो धर्म संस्थितः ।**

यस्यासौ ज्वलनामासः खड्गरूपो महेश्वरः ।।२३।।

अत्रानिलानलयोश्चामरखड्गरूपेणाविर्भावमाह--

अन्वयः--धर्म संस्थितः वायुः यस्य चामरः (जातः) असौ महेश्वरः ज्वलनाभासः खड्गरूपः (सञ्जातः) इति ।

व्याख्या--धर्मसंस्थितः=धर्मे मर्यादारूपे धर्मे संस्थितो निबद्धः सन् वायुः=अनिलः, यस्य=सर्वेश्वरस्य श्रीकृषणस्य, चामरः=चामररूपेणाविर्भूतः भगवतो नित्यसेवायां संस्थित इति यावत् । यश्च महेश्वरः=महाँश्चासौ ईश्वरो महेश्वरः सर्वशक्तिमान्, ज्वलनाभासः=प्रदीप्तकान्तिः, आ समन्तात् भासते प्रकाशते इत्यर्थे भासृ दीप्तौ इत्यत्माद् धातोः कर्तरि अच् प्रत्यये आभास इति, ज्वलयतीति ण्यन्त ज्वलधातोः **नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः** इति सूत्रेण ल्यु प्रत्यये अनुबन्ध लोपे युवोरनाकौ इति अनादेशे णि लोपे ज्वलन इति निष्पन्नः ।

ज्वलनश्चासौ आभास इति ज्वलनाभासः, असौ=प्रसिद्धोऽनलः, खड्गरूपः= नन्दकनामासिः सञ्जातः । तस्याग्निवत्तेजोरूपत्वमिति सिद्धम् ।।२३।।

हिन्दी भावार्थ--इस मन्त्र में वायु-अग्नि का भगवान् के चँवर और खड्ग (तलवार) रूप में प्रकट होना कहा गया है । निज मर्यादा रूप धर्म में निबद्ध पवन देव भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की नित्यान्तरङ्ग सेवा के लिए चामर (चँवर) रूप से आविर्भूत हुए हैं । इसी प्रकार जो महान् शक्तिशाली चारों और प्रदीप्त है कान्ति जिनकी ऐसे परम प्रसिद्ध अग्निदेव भगवान् के नन्दकनामक खड्ग के रूप में प्रकट हुए । खड्ग का अग्नि के समान तेजोमय होना विख्यात है ।।२३।।

मूल -- **कश्यपोलूखलः ख्यातोरज्जुर्माताऽदितिस्तथा ।**

चक्रं शङ्खं च संसिद्धिं विन्दुं च सर्वमूर्धनि ।।२४।।

यावन्ति देवरूपाणि वदन्ति विबुधा जनाः ।

नमन्ति देवरूपेभ्य एवमादि न संशयः ।।२५।।

यथा नित्यविभूतौ भूषण-वसनायुधादीनि सर्वाणि दिव्यचिन्मयानि तथैव लीलाविभूतौ उलूखलरज्जु-यष्टि-वेणु-शृङ्गादीनि सर्वाणि वस्तु जातानि देवरूपाणीति दर्शयितुमुलूखलरज्ज्वादीनां स्वरूपमाह--

अन्वयः--कश्यपः उलूखलः ख्यातः तथा रज्जुः अदितिः माता (ख्याता) चक्रं शङ्खं संसिद्धिं सर्व मूर्द्धनि विन्दुं च यावन्ति (तानि) विबुधाः जनाः देवरूपीणि वदन्ति, एवम्-आदि देवरूपेभ्यः नमन्ति न संशयः ।

व्याख्या--कश्यपः=मरीचिपुत्रः प्रजापतिः, उलूखलः=धान्यादिपावनसाधनीभूतः लोके ऊखल इति नाम्ना ख्यातः=प्रसिद्धः, कश्यपोलूखल इत्यत्र सन्धिरार्षः । तथा=तेनैवप्रकारेण, रज्जुः=दाम रस्सी

इति लोके प्रसिद्धा-साक्षात् माता=देवमाता, अदिति=दक्षपुत्री कश्यप-पत्नीति विख्याता । यदा बालकृष्णः स्तन्यार्थी दधिमथ्नतीं मातरमुपेयाय तदा वात्सल्यमयी माता यशोदा मन्थनकार्यं विहाय पुत्रं स्तन्यं पाययितुमारेभे । एतस्मिन्नन्तरेऽतृप्तं बालं भूमौ निधाय कार्यान्तरं विधातुं गृहाभ्यन्तरं गता । रुष्टो बालो दधि दुग्ध भाजनानि भङ्क्त्वा तत्र दुग्धोदधौ नारायण इव विहरति स्म । पुनश्च कृतापराधे भीत इव ततः पलायितवान् । पश्चात् मात्रा जवेन गृहीतः सन् तस्मिन्नुलूखले रज्जुभिर्निबद्धः । भगवान् स्वेच्छया पितृस्वरूपे धर्ममये उलूखले मातृरूपाभी रज्जुभिर्यशोदाया वात्सल्य वशीभूतो बन्धनं ययाविति पौराणिकः प्रसङ्गः अत्रानुसन्धेयः ।

अथ वैष्णवानां बाह्यचिह्नानि निरूप्यन्ते--ये कण्ठलग्नतुलसी-नलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नित शंखचक्राः ।

ये वै ललाटपटले लसदूर्द्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशुपवित्र-यन्ति ।

इति पुराणोक्तवचनानुसारं ये वैष्णवाः चक्रम्=दक्षिणबाहौ चक्रचिह्नं धारयन्ति शंखम्=वामबाहौ शंखचिह्नं धारयन्ति तेषां समीपे लौकिकाः अलौकिका विपत्तयो दारिद्र्यदुःखौघा नापतन्ति । चक्रस्य-रक्षकत्वात् शंखस्य लक्ष्मीरूपत्वेन निखिलैश्वर्य प्रदायकत्वात् । एवं सर्व-मूर्धनि=ललाटे संसिद्धिम्=सर्वसिद्धिप्रदमुद्ध्र्वपुण्ड्रं तन्मध्ये विन्दुम्=श्यामश्वेतबिन्दुं च बिभ्रति ते लोकपावना भवन्ति । श्रुतिस्मृतिषूद्ध्र्व-पुण्ड्रस्यस्वरूपं निर्दिष्टं यत् वेणुपत्राकारम् हरेः पादाकृतिः इत्यादि, किञ्च तिलकं हरि-मन्दिरम् इति वचनात् तत्र धार्यमाणं बिन्दुं साक्षादुपास्य श्रीराधाकृष्णयुगलस्य स्वरूपं विभावनीयम् । शंख-चक्रपुण्ड्रानि तुलसी मालिकाया अपि उपलक्षानि ज्ञेयानि । अतएव ये वैष्णवा पूर्वोक्तानि चिह्नानि सदा धारयन्ति ते सर्वे देवरूपा इति विद्वांसो वदन्ति । देवा अपि

तेषामादरं कुर्वन्ति, एवमादि= अनने प्रकारेण देवरूपेभ्यः=सात्विक-प्रकृतिकेभ्य स्तेभ्यः सर्वे जना नमन्ति नमनं कुर्वन्ति न संशयः=अत्र कोऽपि सन्देहो नास्तीतिभावः ॥२४-२५॥

हिन्दी भावर्थ--जिस प्रकार नित्य विभूति में भूषण-वसन आयुध आदि सभी दिव्यचिन्मय होते हैं उसी प्रकार लीलाविभूति में भी ऊखल, रस्सी, वेंत वंशी शृङ्ग आदि सब वस्तु देवरूप होते हैं । इस भाव को दिखाने हेतु ऊखल रस्सी आदि का स्वरूप बताते हैं जो मरिचि पुत्र प्रजापति कश्यप है वे नन्दगृह में ऊखल बन गये, उसी प्रकार जितनी भी रस्सियाँ हैं वे सब देवमाता अदिति का स्वरूप है । जब श्यामसुन्दर बालकृष्ण स्तनपान की इच्छा से दधिगृह में गये जहाँ माता यशोदा दधिमन्थन कर रही थी । बालक को देखते ही दधिमन्थन कार्य को छोड़कर स्तनपान कराने लगी इतने में दुग्धगृह में दूध ऊफनने की सूचना मिली तब कन्हैया को वहीं छोड़कर भीतर चली गयी इधर बालकृष्ण कुपित हो गये उन्होंने दहि-दूध के पात्र फोड दिये वहाँ पर दूध फैलने से समुद्र सा हो गया जैसे आदि देव नारायण क्षीर सागर में विहार करते हैं उसी प्रकार कन्हैया भी विहार करने लगे । इस भूल के कारण भयभीत होकर वहाँ से भागे बाद में यशोदा ने पकड़कर प्रभु को ऊखल में रस्सियों से बांध दिया दामोदर नाम पड़ा । भगवान् अपनी इच्छा से पितृरूप ऊखल में मातृरूप रस्सियों से यशोदा के वात्सल्य के वशीभूत होकर बन्धन में आए अर्थात् बँध गये ऐसा पौराणिक प्रसङ्ग यहाँ पर सम्बद्ध करना समुचित है । अब वैष्णवों के बाह्य चिह्न बताते हैं । ये कण्ठलग्न इत्यादि वचनानुसार जो वैष्णवजन गले में तुलसी की माला धारण करते हैं । दोनों भुजाओं में दाहिने में चक्रचिह्न बाये में शंखचिह्न धारण करते हैं । उन्हें कभी विपत्ति और दुःखों से पीड़ित नहीं होना पड़ता है । क्योंकि चक्र विपत्तियों का

और शंख दारिद्र्य दुःख का नाश करता है । इसी प्रकार जो ललाट में उद्धर्वपुण्ड्र (तिलक) और मध्य में बिन्दु धारण करते हैं वे सकल लोकों को पवित्र करते हैं । शास्त्रों में पुण्ड्र का स्वरूप बताया है कि बांश के पत्ते के आकार का होना चाहिए, अथवा हरिपादाकृति हो तिलक को मन्दिर भी कहा है, मध्य में विराजमान बिन्दु साक्षात् युगल सरकार का स्वरूप समझना चाहिए । यद्यपि मन्त्र में तुलसी का शब्दतः उल्लेख नहीं है । तथापि चक्रादि चिह्नों के साहचर्य से तुलसी का भी ग्रहण समझना चाहिए। अतः जो वैष्णव पूर्वोक्त चिह्नों को सदा धारण करते हैं । वे सभी देवस्वरूप हैं ऐसा विद्वज्जन कहते हैं और देवगण भी उनका समादर करते हैं । इस प्रकार सात्विक प्रकृति वाले उन देवस्वरूप वैष्णवों का सभी नमन करते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२४-२५॥

मूल -- **गदा च कालिका साक्षात्सर्वशत्रु निवर्हिणी ।**
धनुः शार्ङ्गं स्वमाया च शरः कालः सुभोजनः ॥२६॥

अस्मिन् मन्त्रे गदा धनुषोरवतारमाह--

अन्वयः-गदा च सर्वशत्रुनिवर्हिणी साक्षात् कालिका (बभूव) शार्ङ्गं धनुश्च स्वमाया (आविरासीत, शरः सुभोजनः कालः सञ्जातः ।

व्याख्याः--शंखचक्रयोरवतरणक्रमं प्रतिपाद्य सम्प्रति गदावतरणं निर्दिशति गदा च=भगवतः करकञ्जस्थायिनी कौमोदकी अपि, सर्वशत्रु निवर्हिणी=सर्वान् शत्रुन् निःशेषेण वर्हितुं शीलं अस्या इत्यर्थे हिंसार्थक वर्ह धातोः णिनि प्रत्यये स्त्रीत्वात् ङीपी सर्वशत्रुनिवर्हिणी, सकल दैत्यकुलमर्दिनी, साक्षात् स्वयं, कालिका=भगवती दुर्गा प्रादूर्बभूव । शार्ङ्गं= शार्ङ्गनामकम्, धनुः=चापश्च, स्वमाया=स्वकीय श्रीकृष्णस्य वैष्णवी-माया, तथाचोक्तं स्वयमेव दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्ययेति।

कृष्णावतारे तदाज्ञया नन्दपत्न्यां यशोदायां समुत्पन्ना, वसुदेवेन सूतिकागृहं कारागृहं वा समानीता कंसेन गृहीताऽपि तद् हस्ताद् विमुक्ता सती अन्त-रिक्षं स्थिता, योगमाया आविर्भूता अर्थात् श्रीकृष्णस्य विविधलीला समायोजिकेतिभावः । शरः=धनुषि संधीयमानो बाणः सुभोजनः=निखिलं जगत् बुभुक्षुः भोज्यमिव अनायासेन ग्रसति अतएव सुभोजनः, कालः= साक्षात् मृत्युरेव प्रकटितः । वाणोऽपि अनायासेन शत्रून् ग्रसति अतः कालवत् सुभोजन इति भावः । शरत् कालः इति पाठे तु सकलजगन्निया-मकः कालस्तु श्रीकृष्णस्य लीलाविहाराय शरत् ऋतुः संजातः । वत्स-गोपहरणात् ब्रह्ममोहन प्रसङ्गे संवत्सरस्य क्षणरूपेण संकोचात्, रासलीला प्रसङ्गे मानवीरात्रेः दैवी रात्रि रूपेण विकासात् लीलाविभूतावपि परब्रह्मणः पुरुषोत्तमस्य कालनियामकत्वं तन्नियम्यत्वं च कालस्य सिद्धयति ॥२६॥

हिन्दी भावार्थः--चक्रराज सुदर्शन का श्रीनिम्बार्काचार्य रूप में अवतीर्ण होने की बात सर्व प्रसिद्ध है । पाञ्चजन्य शंख भक्तों को धनधान्य से सम्पन्न कराने के कारण लक्ष्मी स्वरूप है, अतः लक्ष्मी रूप से अवतीर्ण बताया गया है । इस मन्त्र में कौमोदकी गदा और शार्ङ्ग धनुष् के अवतार प्रसङ्ग बतलाते हैं । श्रीहरि के कर-कमल में विराजित कौमोदकी गदा जो स्वयं समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाली है उसने दैत्य-दानव संघ का संहार करने वाली साक्षात् भगवती कालिका दुर्गा देवी के रूप में अवतार लिया है । भगवान् के दिव्य शार्ङ्ग धनुष् ने योगमाया का रूप धारण किया जो नन्द पत्नी यशोदा में प्रकट हुई, वसुदेवजी द्वारा कारागृह में देवकी के पास पहुँचायी गयी । उन दुष्ट दलन शक्ति रूपा देवी को मारने के लिए कंस ने पकड़ा जरूर किन्तु उसके हाथ से छूटकर वह अष्टभुजा देवी नभोमण्डल में अवस्थित हो कंस को ललकारती है--हे दुष्ट ? तू मुझे क्या मारेगा, तुझे मारने वाला पुरुष कहीं प्रगट हो चुका

है, यह सुनकर कंस चकित व किंकर्त्तव्य विमूढ हो गया था । भगवान् स्वयं कहते हैं, मेरी यह गुणमयी दैवी माया किसी से जीती नहीं जा सकती, प्रभु का विविध लीलाओं का विस्तार कराने वाली यह वैष्णवी माया बड़ी अद्भुत है, जिसने समस्त विश्व को मोहित कर रखा है । भगवत् शरणापन्न सत्पुरुष ही उसे जीत सकते हैं अन्य नहीं ।

धनुष् में संधान किया जाने वाला बाण जगत् को ग्रसित करने वाला काल बन गया । बाण जिस प्रकार धनुष् से छूटकर शत्रु को ग्रसित करता है उसी प्रकार श्रीहरि की प्रेरणा से काल सबको ग्रस लेता है । दोनों का तुल्य स्वभाव है । कहीं **शरः कालः** की जगह **शरत् कालः** ऐसा पाठ है । उसका तात्पर्य यह है सम्पूर्ण चराचर जगत् का नियामक काल श्रीकृष्ण के लीला विहार के लिए शरद् ऋतु के रूप में प्रगट हुआ । काल जगत् का नियामक है किन्तु परमात्मा का नियम्य है । अतएव लीला विभूति में भी भगवदिच्छानुरूप उसका संकोच विस्तार होता है । जैसे वत्स हरण लीला में ब्रह्म मोहन के लिए एक वर्ष काल को क्षण रूप में संकुचित कर दिया और महारासलीला प्रसङ्ग में एक मानुषी रात्री को दैवी रात्रि के रूप में विस्तृत बनाया । इसी संकोच विकास को नियम्य कहा गया है ॥२६॥

मूल -- **अजकाण्डं जगद् बीजं धृतं पाणौ स्वलीलया ।**
गरुडो वट भाण्डीरः सुदामा नारदो मुनिः ॥२७॥

अन्वयः-जगद् बीजं (यत्) अजकाण्डम् (तद्) स्वलीलया (पुरुषोत्तमेन) पाणौ धृतम् । गरुडः वट भाण्डीरः (जातः) मुनिः नारदः सुदामा (सखा) बभूव ।

व्याख्याः-जगद्बीजम्=जगतः विश्वप्रपञ्चस्य बीजं कारणं जगद्बीजम्, भगवतो नाभि सरसः समुद्भूतं सर्वकारण रूपं यत् कमलं तद् अजकाण्डम्=कमलरूपेणैव समुत्पन्नम् । अतएव पुरुषोत्तमेन, स्वलीलया=स्वयं लीला पूर्वकम् पाणौ=करकमले, धृतम्=गृहीतमस्ति । एतेन शंख-चक्र-गदा-पद्मानां नित्यान्तरङ्गपार्षदानां श्रीहरेरवतारलीला सम्पादनाय विविधस्वरूपेणाविर्भावो भवतीति सिद्धम् । अथ च गरुडः=भगवतो नित्य बहिरङ्ग पार्षदः कृष्णावतारे व्रज-मण्डले वट भांडीरः=भाण्डीर वटः संजातः । (भाण्डीरश्चासौ वट इति विशेषण विशेष्य समासे **वटः** इति विशेष्यस्य पूर्व निपातश्छान्दसः) लोके तु भाण्डीर इति विशेषणस्य पूर्व निपातः साधु । मुनिः=निगमागम तत्वज्ञः, नारदः=देवर्षिः सुदामा=एतन्नामकः सखा बभूव समजनि । शमो मित्रः सुदामा च इत्यस्मिन् मन्त्रे शमरूपगुणस्य मित्र सुदामारूपेणावतार उक्तः अत्र पुनः श्रीकृष्णस्य बालसखः सुदामा नारदमुनेरवतार उच्यते । गुणभेदात्, एकस्यैव द्विविधत्वमुक्तम् । इति मन्तव्यम् ।

वस्तुतस्तु पूर्वत्र वर्णितः सुदामा सान्दीपनगुरोराश्रमे सहाध्यायी विप्रः श्रीकृष्णसखो भिन्नः, अत्र वर्णितः सुदामा दामश्रीदामसुदामा वसुदामसु अन्यतमोऽन्तरङ्ग सहचरो नारदावतारः भिन्न इति । सम्प्रदाय परम्परायां नारदनिम्बार्कयोः सखी नामावलिषु मुग्धारङ्ग देवी सख्योः संकेतः मित्रेषु च सुदामस्तोकयोः संकेतो युक्ति युक्त इति ।

हिन्दी भावार्थः--इस मन्त्र में कमल, गरुड, सुदामा का अवतरण प्रसङ्ग वर्णित है ।

चराचरात्मक निखिल विश्व के आदिकारण, भगवान् नारायण के नाभि-सरोवर से समुद्भूत वह दिव्य पद्म श्रीहरि के लीला-कमल के ही रूप में प्रगट हुआ, जिसे प्रभु अपने कर-कमल में धारण करते हैं ।

इस प्रकार शंख-चक्र-गदा-पद्म ये चारों आयुध नित्य अन्तरङ्ग पार्षद हैं, जिस प्रकार श्रीहरि के ये अन्तरङ्ग पार्षद अवतार लीलाओं को सम्पादित करने के लिए विविध रूप से आविभूर्त होते हैं उसी प्रकार गरुड़ादि बहिरङ्ग पार्षद भी नानाविध स्वरूप धारण करते हैं । प्रभु के वाहन स्वरूप गरुडजी ने वृन्दावनविहारी की गोचारणलीला में सुशीतल छाया प्रदान करने हेतु भाण्डीर वट का रूप धारण किया । उधर निगमागम तत्वज्ञ स्वयं श्रीदेवर्षि नारदजी ने सुदामा सखा का स्वरूप धारण कर गोचारण लीला में नित्य सांहचर्य प्राप्त किया । भगवान् के अवतारों की तरह उन नित्य पार्षदों का भी स्वेच्छया स्वांश रूप से अवतरण होता हैं, इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है । **शमो मित्र सुदामा च** इस पद्य में शान्तिरूप गुण का सुदामा के स्वरूप में प्रकट होने की बात कही है यहाँ पर पुनः श्रीकृष्ण के बाल सखा सुदामा नारदजी के अवतार कहे गये हैं, गुण भेद और व्यक्ति भेद से एक का ही दो भेद बताया गया है । किन्तु यह युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता । वास्तव में तो पूर्व में वर्णित सुदामा सान्दीपिनि गुरु के आश्रम में साथ अध्ययन करने वाले श्रीकृष्ण के सखा विप्र सुदामा भिन्न हैं और इस मन्त्र में वर्णित सुदामा दाम श्रीदाम सुदाम वसुदामों में अ़न्यतम अन्तरङ्ग सखा नारदावतार भिन्न हैं । सम्प्रदाय परम्परा में श्रीनारद निम्बार्काचार्य दोनों का सखीनामावली में मुग्धा और रङ्गदेवी के रूप में वर्णन एवं मित्रों में सुदामा स्तोक सखा का संकेत युक्ति युक्त है ।

विद्वानों ने बालकृष्ण के गोपसखाओं की तीन श्रेणी बतायी है- प्रियसखा, नर्मसखा और सामान्य सखा । इनमें प्रियसखा वे हैं जो भूख, प्यास, धूप-छाया, श्रम क्लेश आदि का ख्याल रखते हुए नित्य उनके सौख्य सम्पादन में छायावत् रहते हैं, इनमें श्रीदाउजी के साथ श्रीदामा,

सुदामा स्तोक आदि प्रसिद्ध हैं । नर्मसखा वे हैं जो हास, परिहास, नानाविध विनोद, खेल-कूद आदि से प्रभु के औदासीन्य को दूर करते हुए विविध मनोरञ्जन कराते हैं । इनमें मधुमंगल, मनसुखा आदि विख्यात हैं । अन्य सुवलादि सामान्य सखा हैं जो प्रभु का हित चिन्तन करते हुए सेवाराधना करते हैं ॥२७॥

मूल -- **वृन्दा भक्तिः क्रिया बुद्धिः सर्वजन्तु प्रकाशिनी ।**
तस्मान्नभिन्नं नाभिन्नमाभिर्भिन्नो न वै विभुः ॥
भूमावुत्तारितं सर्वं वैकुण्ठं स्वर्गवासिनाम् ॥२८॥

अत्र वृन्दायाः क्रियायाश्चावतरणमाह--

अन्वयः-भक्तिः वृन्दा (अभवत्) सर्वजन्तु प्रकाशिनी बुद्धिः क्रिया (अजायत) तस्मात् न भिन्नम् न अभिन्नम्, (अतः) वै विभुः आभिः न भिन्नः (भगवता स्वयम्) स्वर्गवासिनाम् सर्वम् वैकुण्ठं भूमौ उत्तारितम् ।

व्याख्याः-भक्तिः=भगवती भक्ति देवी, वृन्दा=वृन्दादेवी-रूपेणाविर्भूता । सर्वजन्तु प्रकाशिनी=सर्वे च ते जन्तवः सर्व जन्तवः, तेषां प्रकाशिनी स्वस्वक्रियासु प्रवर्त्तिनी, बुद्धिः=ज्ञानशक्तिः, क्रिया= क्रियाशक्ति रूपेण अजायत । तस्मात्=अंशांशिनोः सहाविर्भावात्, न भिन्नम्=न पृथक्त्वेन ज्ञातुं शक्यते, न च अभिन्नम्=अपृथक्त्वेन निर्देष्टुं च न पार्यते, अतो विभुः=परमात्मा, आभिः=चिदचिच्छक्ति रूपाभिः, भिन्नः= पृथक् न वै=नैव भवितुमर्हतीति पूर्वेषामौपनिषदानां सिद्धान्तः ।

एवमंशिना परमात्मना सह समेषामंशरूपाणामाविर्भावोऽभवत्। अतः अंशांशिनोः स्वरूपेण भिन्नत्वेऽपि दिव्याऽदिव्यरूप-चराचरा-त्मकांशस्य भगवदधीनस्थितिप्रवृत्तिकत्वात् तदभिन्नत्वं सुसिद्धम् ।

अतः तयोः स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्धो भगवन्निम्बार्का-चार्याणां दार्शनिकसिद्धान्त इति । अत एव भगवता स्वयं स्वर्गवासिनाम्= स्वर्गोपलक्षित दिव्य गोलोकादि धामनिवासिनाम्, नित्यान्तरङ्ग बहिरङ्ग पार्षदानां कृते सर्वं वैकुण्ठं निखिलम्, इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारेण, भूमौ=प्राकृतभूभागेऽपि अप्राकृतं धाम, उत्तारितम्=आविष्कारितम् । इति

हिन्दी भावार्थः--भक्तिदेवी वृन्दादेवी केरूप में प्रकट हुई है, समस्त जीवों को अपने-अपने कर्त्तव्य में लगाने वाली ज्ञानशक्तिरूपा बुद्धि देवी क्रिया शक्ति के रूप में आविर्भूत हुई । इस प्रकार अंशी परमात्मा के साथ अंशों अर्थात् समस्त दिव्यादिव्य चराचर जगत् का आविर्भाव हुआ । भगवान् की एक पाद विभूति रूप लौकिक जगत् और त्रिपाद विभूति रूप अलौकिक धामादि वैभव अर्थात् दिव्यादिव्य चराचरात्मक जगत् भगवान् का अंश होने से भगवान् से अत्यन्त भिन्न भी नहीं है एवं सर्वथा स्वरूपतः अभिन्न भी नहीं है । अतः आचार्यों ने शास्त्रों में स्वतः स्फूर्त इसी स्वरूप को स्वभाविक भेदाभेद किंवा स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त निरूपित किया है । एतावता भगवान् भी अपनी पराऽपरात्मक इन शक्तियों से अत्यन्त भिन्न नहीं हैं । भिन्नाऽभिन्न होने के कारण ही सभी वैकुण्ठादि दिव्य-धाम एवं समस्त पार्षदों का भगवान् के साथ इस धराधाम पर अवतरण हुआ है ॥२८॥

मूल -- **सर्व तीर्थ फलं लभते य एवं वेद ।**
देह बन्धाद् विमुच्यते । इत्युपनिषद् ।।२९॥

उपनिषद् विद्याया ज्ञानस्य फलं निर्दिशति--

अन्वयः-यः एवं वेद (सः) सर्वतीर्थ फलं लभते (तथा) देह बन्धाद् विमुच्यते । इति उपनिषद् ।

व्याख्या-यः=मुमुक्षुसाधकः एवम्=समस्त विभूतीनां भगवता सह स्वाभाविक भिन्नाभिन्न सम्बन्धम्, वेद=जानाति सः साधकः अस्मिन् लोके सर्वतीर्थ फलम्=समस्त तीर्थ यात्रायाः स्नानादिकस्य च पुण्यम्, लभते=प्राप्नोति शरीरान्ते च देहबन्धात्=अनादिकर्मवासनाजनित शरीर-बन्धनात् विमुच्यते=मुक्तो भवति । अर्थात् भगवद् भावापत्ति रूपं मोक्षं प्राप्नोति । इति पूर्वोक्त प्रकारेण उपनिषद्=इयमुपनिषद् विद्या पूर्णा जाता ।

इस मन्त्र में उपनिषद् विद्या के ज्ञान का फल बताते हैं--जो मुमुक्षु साधक पूर्वोक्त प्रकार से भगवान् के साथ समस्त विभूतियों का पारस्परिक भेदाभेद सम्बन्ध को जानता है, उसे इस लोक में सम्पूर्ण तीर्थों का फल प्राप्त होता है और शरीरान्त के पश्चात् अनादिकर्म वासना जनित देह बन्धन से छुटकारा मिल जाता है । अर्थात् भगवत् कृपा से भगवत् भावापत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । इस प्रकार यह उपनिषद् विद्या पूर्ण हुई ॥२९॥

हरिः ॐ तत्सत् ।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

* युग्म--पञ्चकम् *

सृजति निखिलविश्वं यन्निदेशाद्विधाता
पुनरवति विभुः श्रीविष्णुरूपः स्वशक्त्या ॥
हरति खलु युगान्ते रुद्रेदेवो,ऽपवर्गं
वितरति जयतात् तद् राधिकाकृष्णयुग्मम् ॥१॥
विहरति विपिने श्रीराधया मोदमानः
सकलसहचरीभिश्चापि कुञ्जान्तराले ॥
तरणितनयया सं वेष्टिते दिव्यधाम्नि
मृदुलतरुलताभिः सेवितः श्रीमुकुन्दः ॥२॥
रसिकजनमनोज्ञं केलिमाधुर्यशोभं
त्रिभुवनरमणीयं श्यामगौरस्वरूपम् ॥
कथयति नरनारीरूपतो भिन्नमप्य-
खिलगुणगणतोऽभिन्नं श्रुतिर्युग्मतत्त्वम् ॥३
सुमधुरमुरलीवाद्येन संगीतमावि-
ष्कृतमथ च यदा त्रैलोक्य मासीद् विमुग्धम् ॥
व्रजयुवतिजनानां जीवनं रासलीला-
विहरणविधिना यद् वाञ्छितं तच्चकार ॥४।
निगमगणसुगीतं सूत्रतन्त्रादिगम्यं
स्मृति विवृतिविवेच्यं काव्यविद्भिः स्तुतं यद् ॥
भवजलधिनिमग्नैराश्रितं मुक्तसेव्यं
तदिह मनसि राधाकृष्णयुग्मं दधामि ॥५।
इत्येवं युगलं रूपं श्रीराधामाधवाभिधम् ॥
मुमुक्षुः प्रार्थयेद् भक्त्या ब्रह्मभावोपलब्धये ॥६॥

--वासुदेवशरण उपाध्याय

